हमारे

गाँवों की कहानी

लेखक

स्वर्गीय रामदास गौड़, एम० ए०

सस्ता साहित्य मण्डल,
दिल्ली

प्रकाशक—

मार्तण्ड उपाध्याय,

मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

पहली बार २०००

अप्रैल सन् १९३८

मूल्य

आठ आना

मुद्रक—

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,

नई दिल्ली

प्रकाशक की ओर से

हमे इस वात की बहुत खुशी है कि 'मण्डल' से प्रकाशित होनेवाली नई 'लोक साहित्य माला' की शुरुआत हम स्वर्गीय श्री रामदास गौड की इस पुस्तक से कर रहे हैं।

इस पुस्तक के पीछे एक लम्वा इतिहास है। सन् १९२९-३० के दिनो मे स्व० गौडजी से 'मण्डल' ने 'ग्राम-सुधार ओर मगठन' के विपय पर एक ग्रन्थ लिखाया था। सन् १९३०-३१मे गौडजी ने उसे लिखकर अपने मित्र और 'मण्डल' के सचालक-मण्डल के प्रमुख सदस्य श्री महावीरप्रसाद पोद्दार को देखने के लिए कलकत्ते भेज दिया। ग्रन्थ वहुत वडा होगया था और उनकी तथा 'मण्डल' की यह राय हुई कि गौडजी इसको कुछ छोटा करदे ओर इमे देखने के लिए गुजरात विद्यापीठ के आचार्य श्री काका कालेल्कर और महामात्र श्री नरहरि परीख के देखने को भेजदे। इसके मुताविक गौडजी ने इस ग्रथ को काका सा० को, जवकि वह काशी-विद्यापीठ के समावर्तन-मस्कार के निमित्त काशी गये थे, देदिया। काका सा० और नरहरिभाई ने ग्रन्थ को देखा-न देखा कि सन् १९३२ का आन्दोलन शुरू होगया, गुजरात-विद्यापीठ पर सरकार का कब्जा होगया और काका मा० और नरहरिभाई जेल चले गये। सन् १९३३ मे जव विद्यापीठ पर मे प्रतिवध उठा नव 'मण्डल' के मत्री ने उस ग्रन्थ के वारे मे वहॉ पूछताछ की। लेकिन मालूम हुआ कि ग्रन्थ कही खोगया है। इतने वडे और इतनी मेहनत से लिखे गये ग्रथ के खो जाने मे हम सवको वडा दु ख हुआ।

लेकिन सन् १९३४ मे जव मण्डल दिल्ली आ चुका था, तव उत्माही राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता श्री वलवीरमिह हमे मिले और गौडजी की

इस पुस्तक के बारे मे पूछने लगे कि वह प्रकाशित हुई है या नही ? तब हमने उसके खो जाने की सारी कहानी उनको सुनाई। इसपर उन्होने कहा कि "इसकीएक नकल तो मेरे पास है, अगर आप चाहे तो मैं आपको दे दूँ।" हमे यह सुन आनन्द हुआ और आश्चर्य भी। पूछने पर उन्होने बताया कि जब यह पुस्तक श्री महावीरप्रसाद पोद्दार के पास,कलकत्ता गई थी तब वह उनके साथ शुद्ध खादी भण्डार मे काम करते थे। वहाँ इस पुस्तक को उन्होने पढा। और पढने पर उनको वह इतनी अच्छी लगी कि रात-रात भर जागकर चुपके से उसकी नकल करली। इसका न तो पोद्दारजी को पता था ओर न गौडजी को ही ।

श्री बलवीरसिंहजी ने ग्रन्थ मण्डल को देदिया। 'मण्डल' ने फिर गौडजी को भेजा कि इसको अगर कुछ घटादे और अद्यवत् (Up to date) बनादे तो इसे प्रकाशित किया जाय। लेकिन वह दूसरे ग्रथो के लेखन आदि मे इतने व्यस्त रहे कि इसका सपादन न कर सके और अत मे पिछले वर्ष भगवान् के घर जा रहे। उसके बाद यह ग्रथ फिर गौडजी के मित्र श्री कृष्णचन्द्रजी (सबजज, काशी) की मारफत श्री पोद्दारजी के पास गया। उन्होने इसे शुरु से अत तक पढा और उन्होने मण्डल को सलाह दी कि इसको अब जैसा-का-तैसा ही प्रकाशित करना चाहिए। इसी निश्चय के फल स्वरूप इस ग्रन्थ का यह पहला खण्ड आपके हाथ मे है। और दूसरा खण्ड 'मण्डल' की 'सर्वोदय साहित्यमाला' (बडी माला) से शीघ्र ही प्रकाशित होगा।

इस प्रकार श्री बलवीरसिंहजी के परिश्रम से गौडजी का यह ग्रन्थ बचगया इसके लिए वह हमारे और पाठको के बहुत धन्यवाद के पात्र है।

यह इसका सारा इतिहास है। 'मण्डल' ने इस ग्रथ पर स्व० गौडजी के परिवार को रॉयल्टी देना तय किया है। पहले तो यह ग्रथ ही इतना

उपयोगी और उत्तम है कि प्रत्येक ग्रामसेवक और लोकसेवक के लिए इसको अपने पास अपने मार्ग-दर्शन के लिए रखना बहुत ज़रूरी है। दूसरे जितना ही इसका अधिक प्रचार होगा उतनी ही स्व० गौडजी के परिवार वालो को आर्थिक सहायता होगी और होती रहेगी। इसलिए आशा है,प्रत्येक ग्राम सेवक और लोकसेवक इसे अवश्य खरीदेगा और लाभ उठावेगा।

लोक साहित्य माला की यह पहली पुस्तक है। 'महाभारत के पात्र'-१ इसकी दूसरी पुस्तक होगी।

इस माला मे इसी आकार-प्रकार, छपाई और मूल्य वाला सर्वसाधारण के लिए ज्ञानवर्धक और चरित्र को ऊँचा उठानेवाला राष्ट्रीय साहित्य निकलेगा। इसकी पूरी योजना इस पुस्तक के अन्त मे दी गई है। हम इस माला को सब तरह से सम्पूर्ण और उत्कृष्ट बनाना चाहते है। लेकिन यह सब हिन्दी भाषा के उदार पठको, लेखको और भारत के लोकनेताओ के प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन पर निर्भर करता है। आशा है, पाठकवर्ग ज्यादा-से-ज्यादा तादाद मे इसको ख़रीदकर और इसका प्रचार करके तथा लेखकवर्ग इसके लिए पुस्तके लिखकर और लोकनेता इस दिशा मे हमारा मार्ग-दर्शन करके इस काम को पूर्ण करने मे हमारी सहायता करने की कृपा करेगे।

—मंत्री

सस्ता साहित्य मण्डल

भूमिका

आधुनिक ऐतिहासिक विद्वान् विशेषत भारतवर्ष के इतिहास के सम्बन्ध में मुख्य धारणाओ के साथ अपने सभी विचारो को सुसगत करने की कोशिश करते हैं । उनकी एक धारणा यह है कि पाश्चात्य इतिहास की तरह यहाँ का इतिहास भी विकासवाद के अनुरूप होना चाहिए । दूसरी धारणा यह है कि मानव सभ्यता का इतिहास इतना पुराना नहीं है जितना हिन्दू बताते हैं । तीसरी धारणा यह है कि आर्य लोग कहीं विदेश से भारत में किसी भूतकाल में आये थे । पहली धारणा में यह दुर्बलता है कि विकास-विज्ञान उत्तरोत्तर वर्धमान शास्त्र है । उसके आधार पर इतिहास की कोई स्थिर इमारत सभी देशो और कालो के लिए सुभीते से नही खडी की जा सकती । दूसरी धारणा भी पहली के ही आधार पर है और विज्ञान गत पचास बरसो के भीतर सृष्टि और सभ्यता के भूतकाल की सीमा को बराबर बढाता आया है, अत इस धारणा में भी स्थिरता का अभाव है । तीसरी धारणा कुछ विशेष कल्पनाओ के आधार पर है जिन पर भी विद्वानो का मतभेद है । हमारा प्राचीन साहित्य हमारे निकट उसका तनिक भी समर्थन नहीं करता । सुतरॉ मै तीसरी धारणा को निराधार मानता हूँ ।

पाठको के सामने भारतीय गाँवो के इतिहास के जो ये पृष्ठ मै रख रहा हूँ, उनमें मैंने उपर्युक्त तीनो धारणाओ की जानबूझ कर उपेक्षा की है । साधारण पाठक भी इस झगडे में नही पडना चाहेगे कि सतयुग पाँच हजार पहले हुआ या बीस लाख बरस पहले । या यह कि सतयुग में यदि वह सृष्टि काल के पास था, मनुष्य को कपडे बनाने की कला आती

चाहिए या नही ? अथवा यह कि यहाँ के गाँवो को आर्यों ने वाहर से आकर बसाया या वे भारत में पहले से ही बसे हुए थे। हमारे इतिहास का आधार हमारा साहित्य है और उसमें भी यह विषय सर्वसम्मत है कि वेदो से अधिक पुराना ससार में कोई साहित्य नही है। पुराने-से-पुराने साहित्य के आधार पर प्राचीनतम गाँवो का इतिहास अवलम्बित है, फिर चाहे उसे पाँच हजार वरस हुए हो, चाहे पाँच लाख। हमारे गॉवो की जव से आबादी है हम उसी समय से अपने वर्णन का आरम्भ करते है। फिर चाहे वे गॉव इस भूतल पर किसी देश के क्यो न हो वे गाँव हमारे ही थे किसी और जाति के नही।

इस कहानी के लिखने का उद्देश्य यह है कि हम अच्छी तरह देखें कि हमारी उन्नति कहाँतक हुई थी और आज हमारा पतन किस हद तक हुआ है। अपनी वर्त्तमान स्थिति को अच्छी तरह समझने के लिए भूतकाल की स्थिति का जानना आवश्यक है, क्योकि वर्त्तमानकाल भूतकाल का पुत्र है। साथ ही भावी उन्नति और उत्थान के लिए ठीक मार्ग निश्चय करने में भूतकाल का इतिहास वडा सहायक होता है। आज हमारे गाँवो के लिए जीवन और मरण का प्रश्न खडा है। इसे हल करने के लिए भी हमें अपने पूर्वकाल का सिहावलोकन करना आवश्यक है। ग्राम सगठन की समस्या देश के सामनें है। उसकी पूर्त्ति में इस कहानी से सहायता मिल सकती है। इस कहानी की हमारे ग्राम सगठन के काम में कुछ भी उपयोगिता सिद्ध हुई तो मैने, इस पोथी के सकलन में, जो कुछ परिश्रम किया है उसे सार्थक समझूंगा।

वडी पियरी, काशी

रामदास गौड़

विषय-सूची

हमारे

गाँवों की कहानी

: १ :

सतजुगी गाँव

१. गाँव किसे कहते हैं ?

तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीवला ।
क्षेत्रोपयोग-भू-मध्ये वसतिर्ग्रामसञ्ज्ञिका ।।

--मार्कण्डेय पुराण ।

गाँव किसे कहते हैं ? आज भारत देश मे कोई ऐसी बात पूछ बैठे तो लोग उसे पागल कहेगे। बड़े से बड़े शहर में रहनेवाला बड़ा आदमी भी जिसे किसी बात की कमी नही है, कम-से-कम हवा खाने के लिए गाँव की ओर जरूर जाता है। इसलिए कोई ऐसा नहीं है जो गाँव के लिए पूछे कि किसे कहते है। तो भी भारी-भारी पण्डितों ने यह बताया है कि गाँव किसे कहते है। गाँव उसी बस्ती का नाम है जिसमे मेहनत मजूरी करनेवाले, और सब जरूरत की वस्तुओं से रॅजे-पुञ्जे खेतिहर रहते हों और जिसके चारों ओर खेती करने के लायक धरती हो। ऊपर लिखे श्लोक के लिखनेवाले ने गाँव के रूप का एक नकशा खींचा है। भारत खेतों का देश है। अन्न और कपडा इन्हीं खेतों से मिलने हैं। संसार की अच्छी से अच्छी चीजे, भोग-विलास की सामग्री तक लगभग सभी इन्हीं खेतों की उपज है। इन्हीं खेतों की बदौलत किसान सुखी और निश्चिन्त रह सकता है। इन खेतों पर मेहनत मजूरी खूब जी लगाकर की जाती है, तभी सब मनचाहा

सामान मिल सकता है। इसलिए गाँव मे मजूर और किसान इन दोनों का होना जरूरी है। मजूर जब अपने खेत मे काम करता होता है, तब किसान कहलाता है। किसान जब मजूरी लेकर दूसरे का काम करता है तब मजूर कहलाता है। गाँव के रहनेवाले सभी मजूर और किसान है। एक कुम्हार जब औरों को बरतन बनाकर देता है, एक तेली जब औरों के लिए तेल पेलता है, एक कोरी जब औरों के लिए कपड़े बुनता है, और एक चमार जब औरों के लिए जूते बनाता है, तब वह मजूर का काम करता है। परन्तु जब कुम्हार, तेली, कोरी, चमार, बनिया, कायस्थ, क्षत्रिय, ब्राह्मण अपने लिए अपने खेती-बारी का काम करते है, तब सब के सब किसान है। गाँव मे आपस के और नाते भी होते है, पर मजूर और किसान का आपस का नाता सबमे बराबर है। आदमी सभी बराबर है। सब अपना-अपना काम करते है।

आजकल भी हम गाँवों मे देखते है तो थोडी-बहुत ऐसी ही बात पाई जाती है। पण्डितों ने जो गाँव का नकशा खींचा है वह बिलकुल मिट नहीं गया है। आज भी हम गाँवों मे जाकर देखते है तो मजूरों और किसानों को पाते है। हाँ, उन्हे सुखी नहीं पाते। बहुत से हड्डी की ठठरी देख पडते है। बहुत-से रोगी आलसी और बेकार भी है। आधे से अधिक ऐसे है जिन्हे दिन-रात मे एक बार भी भरपेट रूखी रोटी नहीं मिलती। खेतों में अनाज पैदा होता है, पर वह न जाने कहाँ चला जाता है। वे अन्न उपजाते है, पर औरों के लिए। वे चोटी का पसीना एडी तक बहाते है और काम के पीछे मर मिटते है, पर औरों के लिए। धूप, आँधी, पानी, ओले, पाला, बरफ सबका कष्ट झेलकर सेवा करते है पर उनकी सेवा करते है जो उन्हे लात मारते है, उपकार के बदले उलटे अपकार करते हैं। उनकी यह घोर

दरिद्रता—जिसको देखकर रोये खड़े हो जाते हैं, जी दहल जाता है—उन अपकारियों पर कोई प्रभाव नहीं डालती। वे कहते हैं कि ये तो सदा के दरिद्री हैं, पशु हैं और हमारे सुख के लिए बनाये गए हैं। उनकी कल्पना मे इन गाँवों के सुख के दिन आते ही नहीं। आजकल की पच्छाही कल-पुरजों की सभ्यता से जिनकी आँखे चौंधियाँ गई हैं, पच्छाँह की माया से जिनकी बुद्धि चकरा गई है, वे सोचते हैं कि मजूरों और किसानों की दशा पहले कभी अच्छी रही हो, ऐसा नहीं हो सकता और आज तो इनकी दशा सुधारने के लिए बड़े-बड़े कल कारखाने खुलने चाहिए। क्या इनके विचार ठीक है? क्या मजूर और किसान पहले अधिक सुखी नहीं थे? क्या पहले भी आज की तरह खेती से इनका गुजारा नहीं होता था? इन बातों पर विचार करने के लिए हमे प्राचीनकाल की सैर करनी चाहिए।

२. सतजुग का आरंभ

सतजुग की चर्चा हमने बहुत सुनी है, पर हम नहीं जानते कि सतजुग किसे कहते हैं। पण्डित लोग बताते हैं कि वह समय बहुत-बहुत दिन हुए बीत गया। लाखों बरस की बात है। अनेक पढ़े-लिखे कहते हैं कि कई लाख नहीं तो कई हजार बरस तो जरूर बीत गए हैं। चाहे जितना समय बीता हो वे लोग जिसे वेद का युग कहते हैं उसीको सतजुग भी कहा जाता है। पण्डितों का यह भी कहना है कि भारत के लोग आर्य हैं, और आर्य का सीधा-साधा अर्थ किसान है।[१] आर्य किसान को कहते हैं। इस बात की गवाही वेदों से भी

१ रमेशचन्द्र दत्त रचित अंग्रेजी के "प्राचीन भारत मे सभ्यता का इतिहास", पृष्ठ ३५।

मिलती है।[१] राजा पृथु की कथा, सीताजी का जन्म, अकाल पड जाने पर बड़े-बड़े ऋषियों की तपस्या, यज्ञ, पूजा आदि कथाओं से पुराण भरे पड़े है। कृष्ण और हलधर किसानों ही के नाम है। खेती गोपालन और व्यापार वैश्यों का खास काम बताया गया है। किसान बिना गऊ पाले खेती का काम चला नहीं सकता। और खेती मे उपजा हुआ अन्न जब गाँव के खर्च से बचेगा तो उसे अपने गाँव से बाहर बेचना ही पड़ेगा। इसलिए जो काम वैश्य जाति का बताया गया है वह किसान का ही काम है। वेदों मे 'विश्' आर्य प्रजा के लिए आया है। इसीसे वैश्य बना। इसलिए वैश्य भी किसान ही को कहते हैं।[२]

१ यववृकेणाश्विना वपन्तेष दुहन्ता मनुषाय दस्त्रा।
अभि दस्यु बकुरेणा धमन्तोरुज्योतिश्चक्रथुरार्याय॥
ऋक् १। ११७। २१

हे अश्विनी कुमारो! हल से जुते खेत मे यवादि धान्य बुवाते हुए तथा मेघ बरसाते हुए खेत के नाश करनेवाले दस्यु को बकुर से (वज्र से) मारते हुए तुम दोनो ने आर्य वैश्य के लिए विस्तीर्ण सूर्य नाम की ज्योति बनाई है।

ओमासश्चर्षणी[१]धृतो विश्वे देवास आगत। दाश्वासो दाशुष सुतम्॥१॥
ऋक् १। ३। ७

उत न सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टय[२]। स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि॥२॥
ऋक् १। ४। ६

(१) चर्षणि, (२) कृष्टि—ये दोनो शब्द मनुष्य वाचक है। हे देवताओ! धनादि देनेवाले आप लोग हवि देनेवाले यजमान के घर पर पधारो॥१॥

हे शत्रु नाशक इन्द्र! तेरी कृपा मे शत्रु भी हमे अच्छा बतलावे, फिर हम इन्द्र से प्राप्त सुख मे रहे॥२॥

२ पुरुष सूक्त के सिवाय सहिताओ मे और कही 'वैश्य' शब्द नही

हमारी दुनिया सतजुग से ही शुरू ही है और वोली का शुरू भी सतजुग में ही मानना पड़ेगा। इसलिए हम सहज में ही समझ सकते है कि सतजुग मे खेती का काम वहुत होता रहा होगा। साधारण लोग खेती या मजूरी ही करते रहे होंगे। प्रोफ़ेसर सन्तोषकुमार दास अपनी अंग्रेजी की "प्राचीन भारत का साम्पत्तिक इतिहास" नामकी पुस्तक मे पृष्ठ ६ पर लिखते हैं कि "धरती के चार विभाग होते थे। (१) वास्तु (२) कृषियोग्य भूमि (३) गोचर भूमि (४) जगल। वास्तुभूमि का मालिक किसान होता था। • वास्तव में जितने युद्ध हुआ करते थे गऊ या खेतो का हरण के लिए हुआ करते थे। जीत का भाग जीतनें वालो में वँट जाता था।" लोग गाँव मे अपने परिवार के साथ रहते थे और खेतों के मालिक की हैसियत से खेती करते थे। वाप मर जाता था तब वेटों मे जायदाद् बंटती थी। गोचर भूमि और जंगल पर सवका अधिकार था। वेदों मे इन अधिकारों के दायभाग की भी चर्चा है। इस पोथी में यह भी लिखा है कि "प्रोफेसर कीथ (Keith) और दूसरे विद्वान् कहते है कि इस जुग में शहर होते ही न थे। शहर का होना सिद्ध करने के लिए जो मन्त्र कहा जाता है उसका अर्थ यह विद्वान् यह लगाते हैं कि शरदऋतु में वाढ आने पर इन मिट्टी के

आया। 'विश्' शब्द का वरावर प्रयोग है जिसका अर्थ 'साधारण प्रजा' लिया गया है। इसलिए यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि 'वैश्य' साधारण प्रजा के अधिकाश समुदाय का नाम होगा। यह वात विलकुल स्पष्ट है कि देश के भरण-पोपण के लिए मवसे अधिक सख्या किसानो ही की होनी चाहिए। ब्राह्मणो और क्षत्रियो की आवश्यकतानुसार अत्यन्त कम शूद्रो अर्थात् मजूरो की सख्या लगभग किसानो अथवा वैश्यो के वरावर होगी।

पुरो में किसान लोग शरण लेते थे। यह 'पुर' एक प्रकार के बाँध का नाम है।"[१] जो हो, तो इसमे सन्देह नहीं मालूम होता कि शहर थे भी तो बहुत कम रहे होंगे। गाँवों की ही गिनती सबसे ज्यादा होगी।

मंत्रों से यह भी पता चलता है कि हल से खेत जोते जाते थे और जौ, गेहूँ, धान, मूँग आदि अनाज और गन्ने की पैदावार बहुतायत से होती थी।[२] लोग गाय, बैल, घोड़े, भेड, बकरी रखते थे और चराने को लेजाया करते थे। समय-समय पर खेती के सम्बन्ध मे नई उपज पर, फसल खडी होने पर, कटने पर, बोने के समय इत्यादि अवसरों पर किसान यज्ञ करता था और बडी अच्छी दक्षिणा देता था। ब्राह्मण के दाहिनी ओर गाय होती थी, जो यज्ञ के अन्त मे उसे दी जाती थी। दक्षिणा नाम इसीसे पड़ा है। आजकल पुरोहित जो पद-पद पर गऊ-दान माँगता है वह इस पुराने रिवाज के अनुसार ही

१ शतमश्मन्मयोना पुरामिन्द्रो व्यास्यत्। दिवोदासाय दाशुषे ॥
ऋग्वेद म० ४ सू० म० २०

तथा प्रो० सन्तोषकुमार दास की पुस्तक पृष्ठ १०-११

इन्द्र ने दिवोदास नामक यजमान को पत्थर के बने हुए सौ 'पुरो' को दिया।

२ युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिवधावतु ॥
ऋग्वेद म० ८ सू० २२ म०४

हे अश्विनी कुमारो! तुम्हारे रथ का एक चक्र द्युलोक की परिक्रमा करता है, दूसरा तुम दोनो के समीप से जाता है। हे उदकरक्षक! कुमारो! तुम्हारी अच्छी बुद्धि हमारी तरफ धनादि देने के लिए उसी प्रकार आवे, जिस प्रकार नव-प्रसूता गौ दूध पिलाने के लिए बच्चे के पास जाती है।

है। किसान कितना धनवान होता था, इसका पता उसकी दक्षिणा से लगता है। किसान की आमदनी खेती से, पशुओं से और बागों और जंगलों की उपज से अधिक होती थी। पर केवल अनाज के ही कारोबार मे लोग फँसे नही रहते थे। वेदों मे सूत, रेशम, ऊन और छाल आदि के बने हुए बारीक और उत्तम कपड़ों का अनेक प्रसगों मे वर्णन हुआ है। इसलिए यह बात बिलकुल जाहिर है कि किसान लोगों मे कताई और बुनाई का काम बहुत फैला हुआ था। बचे हुए समय मे ये लोग कताई, बुनाई की कला के अभ्यास मे लगे रहते थे।[१] ये ऊन का रंग उडा देते थे और कपडों को सुन्दर-सुन्दर

१ नाह तन्तुं विजानाम्योतुं न य वयन्ति समरेऽतमाना ।
कस्य स्वित् पुत्र इह वक्त्वानि परो वदात्यवरेण पित्रा ॥
म० ६। सू० ९। स० २

न मैं तन्तु को और न ओतु को ही जानता हूँ और न इन दोनो से बनने वाले कपडे को जानता हूँ। किसका सुपुत्र इन वक्तव्य-व्याख्यातव्य ज्ञापनीय बातो को सूर्य से नीचे लोक मे रहने वाला पुरुष बतला सकता है अर्थात् कोई नही।यदि कोई इन बातो का पता चला सकता है तो सिर्फ वैश्वानर से ही। यह वैश्वानर की स्तुति है।

स इत्तन्तुं स विजानात्योतुं स वक्त्वान्यृतुथा वदाति ।
य ईं चिकेतदमृतस्य गोपा अवश्चरन् परो अन्येन पश्यन् ॥
म० ६। सू० ९। म० ३

इस प्रकार तन्तु आदि का जानना अत्यन्त कठिन है परन्तु यदि कोई जानता है तो वह वैश्वानर ही जानता है—और वही व्याख्या करता है, जो कि सूर्य, अग्नि आदि रूपो से द्युलोक और भूलोकादि मे स्थित है।

स मा तपन्त्यभित सपत्नीरिव पर्शव ।

रंगों मे रंगते थे। सिले हुए कपड़े और अच्छे प्रकार की पोशाक पहनते थे। दूध, घी, तेल, मसाले और औषधियाँ काम मे लाते थे, शहद इकट्ठा करते थे, शक्कर बनाते थे। इसमे तनिक भी सन्देह नही है कि उनके यहाँ तेल और गन्ने पेलने के कोल्हू थे, खंडसाल थी, करघे थे, चरखे थे। खेत की सिंचाई के लिए कुएँ थे जिनसे रहँट से पानी निकाला जाता था। नाले और नहरों से भी सिंचाई होती थी। कभी-कभी सूखा भी पड जाता था और लोग अकाल का

मूषो न शिश्ना व्यदन्ति माध्य स्तोतार ते शतक्रतो वित्त मे अस्य रोदसी १। १०५। ८

मुझे कूप की भीते तकलीफ देती है जिस प्रकार सौते एक पति को दु ख देती है तथा जुलाहे को चूहे जो कि आ आकर के तन्तु काट जाते है, जिनपर माँड लगा रहता है। हे इन्द्र ! तेरे स्तोता मुझको आधियाँ बहुत ही सताती है।

इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणा जुषस्व या ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयू रथ न धीर स्वपा अतक्षम् ॥
५। २९। १५

हे बलवत्तर ! इन्द्र ! हमने तेरी नवीन-नवीन स्तुति तैयार की है जिस प्रकार अच्छे अच्छे वस्त्रो से रथ तैयार किया जाता है, आप उन्हे स्वीकार कर हमे धनवान् बनाइए।

उचथ्ये वपुषि य स्वराडुत वायो घृतस्ना।
अश्वेषित रजेषित शुनेषित प्राज्म तदिद नु तत् ॥
८। ४६। २८

इस स्तुत्य शरीर मे जो स्वाराट् (अन्न) विद्यमान है वह अश्व गधे, कुत्ते इन सबको अभीष्ट है वह अन्न हमे दे। और वह अन्न सामने ढेरी रूप मे विद्यमान है।

भी मुकाबला करते थे। उनके बर्तन ताँबे, पीतल, फूल कासे के होते थे। अमीरों के घर सोने और चाँदी के बर्तन बरते जाते थे। वे गाड़ी, रथ और नाव भी रखते थे और जूते पहनते थे। अच्छे-अच्छे कच्चे, पक्के मकान बनाते थे, चित्रकारी करते थे, मूर्तियाँ बनाते

गावो न यूथमुपयन्ति वध्रय उप मा यन्ति वध्रय ।

८ । ४६ । ३७

मुझे गौएँ तथा वधिये बैल प्राप्त हो रहे है ।

अधयच्चार थे गणे शतमुण्ट्राँ अचिक्रदत् ।
अध श्वित्रेषु विशतिंगता ।

८ । ४६ । ३१

जगलो मे झुण्ड रूप मे चरने वाले ऊँट हमे प्राप्त हो। और श्वेत-रग वालो गौओ के सौ बीसे प्राप्त हो। (इस प्रकार के इस मण्डल मे बहुत मन्त्र है)।

आर्धाषणाया पति शुचायाश्च शुचस्प च।
वासो वायोऽवीना मावासाँसि मर्मृजत् ॥

ऋक् १० । २६ । ६

अपने लिए पाली गई बकरी और बकरो का पालक सूर्य हमारे लिए भेडो की ऊन के बने हुए वस्त्र (जिनको धोबियो ने धोया है) प्रकाश और उष्णता से शुद्ध करता है।

त्वमग्ने प्रयत दक्षिण नर वर्मेव स्यूत परि पासि विश्वत ।
स्वादु क्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाज यजने सोपमा दिव ॥

ऋक् १ । ३१ । १५

हे अग्ने ! तू प्रयतदक्षिण पुरुष की उस प्रकार रक्षा करता है जैसे ताने, बाने, तुरी, वेमा आदि से बनाया हुआ कवच उससे ढके हुए मनुष्य की रक्षा करता है। जो सुखकारी यजमान जीवयजन सहित यज्ञ

थे, बच्चों को पढाते-लिखाते थे और अच्छे-अच्छे व्यंजन बना कर खाते थे। इन सब बातों से यह जाहिर होता है कि गाँव मे किसान ही रहते थे और वे खेती के सिवाय और भी काम किया करते थे। ब्राह्मण पुरोहिती करता था और खेती भी करता था। क्षत्रिय रक्षा

को करता है वह स्वर्ग की उपमा होत। है। अर्थात् जिस प्रकार स्वर्ग प्रत्येक को सुख देता है उस ही तरह वह भी ऋत्विगादिको को सुख देने वाला कहलाने से स्वर्ग है।

सयह्वचोऽवनीर्गोष्ववर्वा जुहोति प्रवन्यासु सस्रि ।
अपादो यत्र युज्यासोऽरथा द्रोण्यश्वासईरतेघृतवा ॥

ऋक् १० । ९९ । ४

वह घोडा (इन्दे) मेघो मे जाता है, पृथ्वी पर चलता है। और वह बिना पैर के जहाँ चलते है वहाँ, जहाँ रथ से नही चलते वहाँ तथा नदियो मे भी चलता है।

समु प्र यन्ति धीतय सर्गासोऽवतॉ इव ।
क्रतुं न सोम जीवसे विवो मदे धारया चमसाँ इव विवक्षसे ॥

ऋक् १० । २५ । ४

हे सोम ! हमारी स्तुतियाँ रहट की डोलचियो के समान इकट्ठी ही चलती है जिस प्रकार वे कूप मे इकट्ठी जाती है। तुम भी हमारे लिए यज्ञ को उस प्रकार धारण करो जिस प्रकार तुम्हारे लिए अध्वर्यु चमस को धारण करता है।

वावर्त येषा राया युक्तैपा हिरण्ययी ।
नेमधिता न पौस्या वृथेव विष्टान्ता ॥

ऋक् १० । ९३ । १३

जिनके धन के कारण हमारी स्तुति वार वार हिरण्यालकार के समान चित्त को प्रसन्न कर रही है। जिस प्रकार पुरुपो की सेना सग्राम मे और

करता था और खेती भी करता था। बनिया व्यापार भी करता और खेती भी करता था। मजूर मजूरी भी करता था और खेती भी। कुम्हार, तेली, भड़भूँजे, चमार, कोरी, ठठेरा, लुहार, बढ़ई, धीवर, ग्वाले,

---

रहट की घटिका यन्त्रमाला कूप में देखने पर चित्त को प्रसन्न करती है।

प्रीणीताश्वान् हित जयाथ स्वस्तिवाह रथमित्कृणुध्वम्।
द्रोणाहावमवतमश्मचक्रमसत्रकोश सिञ्चता नृपाणम्॥

१०। १०१। ७

हे ऋत्विजो! तुम घोडो को घासदाना आदि खिला-पिलाकर मोटा ताजा रक्खो और फिर खेत वगैरा बोओ। और चयन नामक रथ को स्वास्तिवाहक बनाओ। बैलो के पीने के लिए चौबच्चे लकडी, पत्थर आदि के गहरे बनाओ तथा ऐसे हौज भी बनाओ जिनसे मनुष्य जल पी सके।

सीराय् ञ्जन्ति कवयो युगान् वि तन्वते पृथक्।
धीरा देवेषु सुम्नया॥

ऋक् १०। १०१। ४

मेधावी पुरुष हल जोड(त) ते है, जूओ को अलग-अलग बनाते है, जिससे हमे सुख प्राप्त हो।

इस प्रकार इस मण्डल मे तथा अन्य मण्डलो मे भी इस प्रकार ऋग्वेद मे वास्तु विद्या का विस्तृत वर्णन मिलता है।

यत्ते वास परिधान या नीविं कृणुषे त्वम्।
शिव ते तन्वे तत् कृण्म सस्पर्शद्रूक्षणमस्तु ते॥

अथर्व० ८। २। १६

हे बालक! तेरा जो ओढने व पहिनने का वस्त्र है यह तेरे लिए सुखकारी हो—और हम उस वस्त्र को मुलायम बनाते है। इत्यादि।

इसी प्रकार १०। १०१। ३ मे ऋग्वेद मे सातो अनाजो के बोने की भी वेद मे आज्ञा मिलती है। इत्यादि इत्यादि॥

धुनिये, सुनार, धोबी, रङ्गरेज, दर्जी, माली आदि सभी कारबार के लोग गाँवों मे रहते थे और अपने कारोबार के साथ-साथ खेती जरूर करते थे। श्रम-विभाग के अनुसार जातियाँ बन गई थीं। ये जातियाँ धीरे-धीरे वंशानुगत हो गईं।

सतजुग मे गावों की इस व्यवस्था को देखकर यह कौन कह सकता है कि आजकल की तरह उस समय भी मजूर और किसान भूखों मरते थे। उस समय की चर्चा मे भुक्खडों का और दुर्भिक्ष पीड़ितों का वर्णन नहीं है। अधिकाश मनुष्य अपने-अपने अधिकार पर बने रहते थे। दूसरों का हक छीनने की चाल कम थी। धर्म्म की बुद्धि अधिक थी। हरेक गाँव अपने लिए स्वतत्र था। पाप बुद्धि कम होने से चोर डाकू या और सत्वापहारियों का डर न था। यह सतजुग का आरम्भ था।

३. राजकर और लगान की रीति

सतजुग के आरम्भ मे बहुत काल तक किसी ऊपरी हकूमत या शासन की जरूरत न पडी होगी, क्योंकि प्रजा मे अपने-अपने कर्तव्य पूरे करने का भाव था, और धर्म-बुद्धि थी। पराये धन का लोभ-लालच प्रायः तभी अधिक होता है, जब अपने पास किसी वस्तु की कमी होती है। मनुष्यों की बस्ती घनी न थी, सारी बस्ती पड़ी थी। इसलिए लोग जरूरत से ज्यादा धनी और सुखी थे। यह भी कहना अनुचित न होगा, कि इन्द्रियों के सुख की सामग्री न ज्यादा तैयार हुई थी, और न उसका उनको ज्ञान था। अज्ञान के कारण भी लोभ उनको नहीं सताता था। ईसाइयों के सतजुग मे भी आदम ने जबतक ज्ञान के पेड़ का फल नहीं खाया था, तबतक उसे मालूम न था, कि

मैं नंगा हूं, और नंगा रहना बुरी बात है। ज्ञान का फल खाते ही उसे इञ्जीर के पेड को नंगा करके अपना तन ढकना पड़ा। बाग मे ज्ञान और जीवन के पेड थे, जिनका फल खाना उसके लिए वर्जित था। शैतान की दम-पट्टी मे आकर उससे यह भारी भूल होगई। मालूम होता है कि ज्यों-ज्यों आबादी बढ़ती गई त्यों-त्यों तैयार की हुई धरती मनुष्य के लिए घटती गई। लोभ रूपी शैतान ने आदमी को बहकाया। वह परमात्मा की आज्ञा को भूल गया।[१] उसे यह ज्ञान हुआ कि मेरे पास सम्पत्ति कम है, और पडौसी के पास ज्यादा। या अगर मेरे पास पडौसी से ज्यादा सम्पत्ति होजाती तो मैं अधिक सुखी हो जाता। लोभ ने दूसरे की चीज हर लेने की ओर उसके मन को झुकाया। धीरे-धीरे धर्म-भाव का लोप होने लगा स्वार्थ और पाप ने अपनी जड जमाई। कोई राजा या हाकिम न था जो बल के प्रयोग में बाधा डालता।

"राखै सोई जेहि ते बनै, जेहि बल होइ सो लेइ।"

यही नियम चलने लगा। "जिसकी लाठी उसकी भैंस" वाली बात चरितार्थ होने लगी, किसी तरह का राज न होने से उस समय प्रजा एक दूसरे का उसी तरह नाश करने लगी थी, जैसे पानी मे बड़ी-बडी मछलियाँ छोटी-छोटी मछलियों को खाने लगती है। इस तरह बलवानों और निर्बलों का झगडा जब समाज मे उथल-पुथल मचाने

१ ईशावास्यमिद सर्व्व यत्किञ्च जगत्यॉ जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृध कस्यस्विद्धनम्। यजु० ४०। १।

यह सब कुछ, जो कुछ की चलाययान् ससार है, वह परमात्मा के रहने की जगह है, परमात्मा सब मे व्यापक है। उसके प्रसाद की तरह जो कुछ तुम्हे मिले, उसका भोग करो, किसी और के धन का लालच मत करो।

लगा, उस समय जिन लोगों मे थोडी धर्म-बुद्धि थी, वे समाज की इस गडबड़ को मिटाने के लिए लडनेवालों को समझने-बुझाने लगे, और यह कोशिश करने लगे कि गई हुई धर्म-बुद्धि लौट आवे। इसमे वे सफल न हुए। भले लोगों ने इन पशु-बल वालों से बचने के लिए, यह निश्चय किया कि जो लोग वचन के शूर है, लबार है, सब पर जबर्दस्ती किया करते है, पराई स्त्री और पराये धन को हर लेते है, उन सबका हम लोग त्याग करेगे। असहयोग इस तरह सतजुग मे ही आरम्भ हुआ था।

जान पडता है, कि असहयोग बहुत काल तक नहीं चला। जो जबर्दस्त थे, किसीका दवाव नही मानते थे, व्यभिचारी थे, और दूसरों का धन हर लेते थे, उनकी गिनती शायद बहुत बढ़ गई थी, और इतनी बढ गई थी[1] कि उनसे थोडी गिनतीवाले धर्मात्माओं के

१ अराजका प्रजा पूर्व, विनेशुरिति न श्रुतम्।
—महाभारत, शान्तिपर्व्व।

वाक्शूरो दडपरुपो यश्च स्यात्पारजायिक
य परस्वमथाददद्यात्याज्या नस्तादृशा इति।
तास्तथा समय कृत्वा समये नावतस्थिरे॥
म० भा० शा० प०

विभेमि कर्मण पापाद्राज्य हि भृशदुस्तरम्।
विशेपतो मनुप्येपु मिथ्यावृत्तेपु नित्यदा।
तमब्रुवन्प्रजा मा भै कर्त्तृनेनो गमिष्यति।
पशूनामधिपचाशद्धिरण्यस्य तथैव च॥
धान्यस्य दशम भाग दास्याम कोपवर्द्धनम्।
य न धर्म चरिप्यन्ति प्रजा राज्ञा सुरक्षिता॥
चतुर्थ त्वस्य धर्मस्य त्वत्सस्थ वै भविप्यति।

त्याग का उनपर कोई असर न पड़ा। अच्छों ने मिलकर प्रजापति से शिकायत की। इस पर पितामह ब्रह्मा ने एक बहुत बड़े धर्मशास्त्र की रचना की, जो क्रम से बहुत छोटे रूप मे धर्म-भीरू मनुष्यों को मिला। इसका नाम दण्ड-नीति रक्खा गया। परन्तु इतने से काम न चला। दण्ड कौन दे? तब शासन करनेवाले की जरूरत हुई। लाचार हो लोग प्रजापति के पास गये, परन्तु प्रजापति अधिकार के लोभी न थे। उन्होंने लोगों को मनु के पास भेजा। मनु बोले, राजा का काम बडा कठिन है, और पाप से भरा है। जो लोग झूठ के व्यवहार मे लगे रहते हैं उन पर, और खासकर झूठे मनुष्यों पर, शासन करने से मैं डरता हूँ। मनुष्य समाज के सामने यह बडी कठिनाई आखडी हुई। उसने मनु को प्रसन्न करने के लिए उन्हे ये वचन दिये—"आप पाप के लिए न डरिए। पाप करनेवाला उसके फल को भुगत लेगा। आपका कोष बढ़ाने के लिए हम पशु और सोने का पचासवाँ और अनाज का दसवाँ भाग देते रहेगे। आपसे रक्षा पाकर हम लोग जो भले कर्म करेंगे, उसका चौथाई फल आपको मिलेगा। उस पुण्य से सुखी होकर आप हमारी रक्षा उसी तरह कीजिए जैसे इन्द्र देवताओं की रक्षा करता है।

जान पडता है भगवान् मनु ने राज-भार लेने पर जो बन्दोवस्त किया उसका आधार यही इकरारनामा था। बन्दोवस्त करने के बदले और रक्षा कराई के वेतन में मनुष्यों को भूमि पर कर देना पड़ता है। मनु का धर्मराज था। जिन लोगों ने जंगल काटकर मेहनत करके जितनी धरती को खेत बनाया था, उतनी धरती उनकी सम्पत्ति

तेन धर्मेण महता सुख लब्धेन भावित ।
पाह्यस्मान् सर्वतो राजन् देवानिव शतक्रतु ।

होगई। बहुतों के पास जरूरत से ज्यादा धरती थी। बहुतों ने यह चाहा कि हमे धरती को बनाने की मेहनत न करनी पड़े और खेत मिल जाँय। बहुतों के पास इतने खेत थे, कि वे सबको काम मे नही ला सकते थे। इस तरह लेने और देनेवाले दोनों मौजूद होगये। खेत कुछ काल के लिए या सदा के लिए किराये पर दिये जाने लगे। इसी का नाम लगान पडा। राजा का महसूल जमीन के मालिक को देना पडता था। लगान धरती का मालिक लेता था। इस तरह धरती का मालिक खेतीवाले से जो लगान लेता था, वह इतना होता था कि अनाज का दसवाँ भाग राजा को देने के वाद भी उसे कुछ आय बच जाती थी। खेती करनेवाले को छठे भाग तक लगान मे दे डालना पडता था। कुछ भी हो, धरती राजा की नहीं थी। प्रजा की थी। राजा रक्षा करता था। जो भूमि-कर उसे मिलता था वह राजा की तनख्वाह थी। शुक्र नीति मे भी ऐसा लिखा है।

जिन राजाओं ने धर्म के तत्त्व को ठीक तरह पर न समझा और अपने को धरती और प्रजा का मालिक समझकर मनमानी करने लगे, दीनों और दरिद्रों पर अन्याय करने लगे तब प्रजा का नाश होने लगा और उन राजाओं का अपने ही कर्तव से विनाश होगया। राजा वेन अपनी जबर्दस्तियों के कारण ऋषियों के हाथ मारा गया। राजा पृथु गद्दी पर बैठाया गया। प्रजा की उचित रक्षा करने और धरती से अन्न-धन निकालकर प्रजा को सुखी रखने से पृथु का राज ऐसा मशहूर होगया कि उसीसे सारी धरती का नाम पृथ्वी पड गया।

दण्ड-नीति को चलानेवाला राजा होने लगा। वह प्रजापति की ही जगह था। इसलिए संसार की प्रजा उसीकी प्रजा होगई। वह भूप या भूपाल या नरपाल कहलाया, क्योंकि वह धरती और किसान

की रक्षा करता था। उसे तनख्वाह मे राज-कर मिलता था, जिसे वह प्रजा की धरोहर समझता था और रक्षा के काम मे लगाता था। उसे अपने लिए बहुत थोड़े अंश की जरूरत होती थी। जमींदारी, रैयतवारी, लगान, राजा, राज-प्रबन्ध सब कुछ तभी से चल पड़े।

सतजुग के बाद के गाँव

१. त्रेता और द्वापर

सतजुग के बाद के समय को विद्वान लोग त्रेता और द्वापर युग कहते हैं। उसीको प्रायः पच्छाहीं रीति से विचार करनेवाले ब्राह्मण-युग कहते है। इस युग मे भी जितनी बातें सतजुग मे होती थीं उतनी सभी बाते पाई जाती है। युग बदल गया, बहुत काल बीत गया, लोग वेदों को भूल गये, उनका अर्थ समझना अत्यंत कठिन हो गया। परन्तु लोग धातुओं का निकालना न भूले, सोने-चाँदी के सिक्के बनाना न भूले, अनाज उपजाना, पशु पालना, और व्यापार करना बराबर पहले की तरह जारी था। भगवान् रामचन्द्रजी के राज में, जिसे लिखनेवाले तो १०-११ हजार बरस तक का बतलाते है, पर जो अवश्य बहुत काल तक रहा होगा, कभी अकाल नही पड़ा था और जब एक ब्राह्मण का लड़का जवान ही मर गया तो वह उसकी लाश भगवान रामचन्द्रजी के दरबार मे लाया और राजसिंहा-सन से विचार कराना चाहा कि लडका क्यों मरा। क्योंकि उस समय यही समझा जाता था कि अल्पमृत्यु, अकालमृत्यु और दुर्भिक्ष या प्रजा की दरिद्रता ये सब कष्ट जो प्रजा को कभी पहुँचता है, तो इसका दोषी या अपराधी राजा होता है। और यह बात तो बिलकुल साफ ही है कि जब सब तरह से रक्षा करना राजा का ही

काम था, तब प्रजा मे रोग, दरिद्रता, अल्पमृत्यु तो तभी होगी जब उसकी रक्षा पूरे तौर पर न होगी और राजा अपने धर्म का पालन न करेगा और कर वसूल करता जायगा। इससे यह पता चलता है कि रामराज्य मे प्रजा सब तरह से सुखी थी। अर्थात् किसान सुखी, समृद्ध और एक दूसरे की सहायता करनेवाले थे। सतजुग की तरह अब भी खेती मे बहुत बडा और भारी हल काम मे आता था। उसका फाल बहुत तेज और पैना होता था और मूठ चिकना होता था। एक-एक हल मे चौबीस-चौबीस तक बैल जोते जाते थे खेत की जैसी उत्तम प्रकार की सिचाई होती थी उसी तरह खाद भी देना जरूरी था, और भाति-भाति के अनाज उपजाये जाते थे। आज जितने अनाज उपजाये जाते हैं, प्रायः सभी उस समय भी होते थे।[1]

१ लागल पवीरवत् सुशीम सोमसत्सरु।
उदिद् वपतु गामवि प्रस्थावद्रथवाहन पीवरी च प्रफर्व्यम्॥
अथर्व ३।१७।३.

तेज फालवाला हल, सोम यज्ञ के साधन सब अन्नो का उत्पादक होने से सुखकर है। वह बैल, भेड आदि को गमन-समर्थ, मोटा-ताजा रथादिवाहन समर्थ बनावे।

शुनासीरे ह स्म मे जुषेथाम्।
यद्दिवि चक्रथु पयस्तेने मामुपसिञ्चतम्॥
अथर्व ३।१७।७

हे शुनासीर देवो! जो मेरे खेत मे पैदा हुआ है उसे सेवन करो। और जो आकाश मे जल है उससे इस खेत को सीचो।

"चतुरौदुम्बरो भवत्यौदुम्बरः स्रुव औदुम्बरश्चमस औदुम्बर इध्मा आदुम्बर्यौ उपमन्थिन्यो। दशग्राम्याणि धान्यानि भवन्ति —व्रीहियवा-

रामायण से पता चलता है कि खेती बडी भारी कला समझी जाती थी, क्योंकि उस समय वेदों के साथ-साथ शिक्षा का मुख्य विपय खेती और व्यापार था। श्रीरामचन्द्रजी भरतजी से पूछते है कि "तुम किसानों और गोपालों के साथ अच्छा वर्ताव रखते हो या नहीं।" खेती इतने जोरों से होती थी कि अयोध्याजी किसानों से भरी हुई थी। धान की उपज बहुतायत से दिखाई गई है। राजा इस बात का गर्व करता है कि उसका राज्य अन्न-धन से भरा हुआ है। गाँवों वर्णनों मे यह कहा गया है कि वे चारों ओर जुती हुई धरती से घिरे हैं।[१]

हर गाँव मे ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र और हर पेशेवाले जिनकी जीवन मे सबसे ज्यादा जरूरत पडती है, जैसे नाई, धोबी, दर्जी, कहार, चमार, बढई, लुहार, सुनार, ग्वाले, गडरिये आदि होते थे। गाँव का सरदार या मुखिया भी कोई होता था, और पञ्चायतों से हर गाँव अपना स्वाधीन बन्दोबस्त किया करता था। रक्षा के

तिलमाषा अणुप्रियङ्गवो गोधूमाश्च मसूराश्च खल्वाश्च खलकुलाश्चेति। वृहदारण्यकोपनिषत् अ० ६। ब्रा ३। म १३

"दस तरह के ग्रामीण अन्न होते है—धान, (चावल) जो, तिल, उडद, अणु, (सॉवा-कगनी, मसूर, खल्व, कुल्था, गेहूँ।"

व्रीहयश्च मे यवाश्च मे माषाश्च मे तिलाश्च मुद्गाश्च मे खल्वाश्च मे प्रियगवश्च मे ऽणवश्च मे श्यामाकाश्च मे नीवाराश्च मे गोधूमाश्च मे मसूराश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।१८।१२।

इस मन्त्र का अर्थ स्पष्ट है।

१ अयोध्याकाड सर्ग ६८, वालकाड सर्ग ५, अयोध्याकाड, ३।१४, अयोध्याकाड सर्ग ६२।

लिए राजा को उसका उचित कर उगाहकर मुखिया दिया करता था, और उसके बदले राजा वाहरी वैरियों से गाँवों की रक्षा करता था, फिर चाहे वह वैरी मनुष्य हो, कृमि, कीट, पतंग हो, रोग, दोप अकाश, सूखा, पानी की वाढ़, आग, टीडी आदि कुछ भी हो। राजा दसवे भाग से लेकर छठे भाग तक कर लेकर भी राष्ट्र की रक्षा नही कर सकता था, तो उसे प्रजा का चौथाई पाप लगता था[१]।

किसान को त्रेता और द्वापर मे खेती की आजकल की सी साधारण विपत्तियाँ झेलनी पड़ती थीं। चूहे, घूस, छछूदरे वीज खा जाती थीं, चिडियाँ आदि अंकुरों को नष्ट कर देते थे। अत्यत सूखा या वहुत पानी से फसले वरवाद हो जातीं थी। अच्छी फसलों के लिए उस समय भी भाति-भाति के उपाय करने पडते थे। परन्तु खेती को जवकभी हानि पहुँचने की सम्भावना होती थी राजा रक्षा का उपाय करने का जिम्मेदार था। और जवकभी दुर्भिक्ष पडता था राजा के ही पाप से पडता था। राजा रोमपाद के राज मे उन्ही के पाप से काल पड़ा वताया जाता है।[२] राजा का कर्त्तव्य था कि दुर्भिक्ष निवारण के सारे उपाय जाने और करे।

१ आदायवलिपड्भाग यो राष्ट्र नाभिरक्षति।
प्रतिगृह्णाति तत्पाप चतुर्थांशेन भूमिप ॥ —महाभारत

२ वाल्काड, मर्ग १, अयोध्याकाड, सर्ग १००, वालकाड, सर्ग ९।७

"एतस्मिन्नेव काल्तेु रोमपाद प्रतापवान् ॥
अगेपु प्रथितो राजा भविष्यति महावल्।
तस्य व्यतिक्रमाद्राज्ञो भविष्यति सुदारुणा,।
अनावृष्टि सुघोरा वै सर्वलोकभयावहा ॥ इत्यादि।
व्यतिक्रमात्तु राजोचितधर्मविलोपनादिति तिलकव्याख्या।

इस युग मे भी गोशालाये बहुत उत्तम प्रकार से रक्खी जाती थीं। इस युग मे घोप पल्लियाँ[१] अर्थात् ग्वालों के गाँव के गाँव थे और ग्वाले बहुत सुखी और धनी थे और दूध, मक्खन, घी आदि के लिए प्रसिद्ध थे। द्वापर के अन्त मे नन्दगाँव, गोकुल, बरसाना और वृन्दावन तक गोपालों के गाँव थे और कंस जैसे अत्याचारी और लुटेरे के राज मे भी मथुरा के पास इन गाँवों मे दूध, दही की नदी बहती थी। और नन्द और वृपभान जैसे बड़े अमीर ग्वाले रहते थे। इस समय मे भी कुम्हार, लुहार, ग्वाले, ज्योतिषी, बढई, धीवर, नाई, धोबी, बिनकार, सुराकार (कलवार), इपुकार (तीर बनानेवाले), चमडा सिझानेवाले घोड़े, के रोजगारी, चित्रकार, पत्थर गढनेवाले, मूर्ति बनानेवाले, रथ बनानेवाले, टोकरी बनानेवाले, रस्सी बनानेवाले, रङ्गरेज, सुनार, धातु निकालनेवाले नियारिये, सूखी मछली बेचनेवाले, सुईकार, जौहरी, अस्त्रकार, नकली दात बनानेवाले, दाँत के वैद्य, इतर बेचनेवाले, माली, थवई, जूते बनानेवाले, धनुप बनानेवाले, औषध बनानेवाले और रासायनिक आदि की चर्चा इस समय के ग्रन्थों मे आई है।[२]

१ तैत्तिरीय ब्राह्मण, काण्ड १। प्र० ४। अ० ९। ख० २। से मालूम होता है कि गाये तीन बार चरने को भेजी जाती थी और उनकी अच्छी सेवा होती थी। तथाहि—

"त्रिपु कालेषु पशव तृणभक्षणार्थ सञ्चरन्ति।
तत्तन्मध्यकाले तु रोमन्थ कुर्वन्तो वर्त्तन्ते। इति।" अर्थ स्पष्ट है।

२ शुक्ल यजुर्वेद अध्याय १६ और ३०, रामायण अयोध्या काड सर्ग १००, बालकॉड, सर्ग ५। हम वेद के मन्त्रो का उदाहरण नही देते क्यो कि सारा अध्याय ही उदाहरणीय है। अत पाठक किसी भी मन्त्र को

कपड़े की बिनाई की कला भी अपनी हद को पहुंच चुकी थी। सोने और चाँदी के काम के कपड़े, जरी के काम के पीताम्बर आदि भी बनते थे। जिनमे जगह-जगह पर रत्न और नगीने टके हुए थे। ब्राह्मण लोग कौशेय वस्त्र पहनते थे और तपस्वी छाल के बने कपड़े पहनते थे। रंगाई भी अच्छी होती थी। रुई के मैल को उडाने के लिए इस युग मे एक यन्त्र काम मे आता था। ऊन के रेशम के बड़े अच्छे-अच्छे प्रकार के महीन और रंगीन और चमकीले कपड़े बनते और बरते जाते थे।[1]

उठाकर देख सकते हैं। तथा बालकाण्ड का सारा सर्ग ही यहाँ पठन योग्य है।

१ "कौशेयानि च वस्त्राणि यावत्तुष्यति वै द्विज" इत्यादि

अयोध्याकाड अ० ३२। श्लोक १६।

"भूषणानि महार्हाणि वरवस्त्राणि यानि च"

अयोध्याकाण्ड ३०।४४

"सुन्दर काण्ड का नवॉ सर्ग ही द्रष्टव्य है। पाठक देख सकते हैं।

"माहर्षोत्फुल्लनयना पाण्डुरक्षौमवासिनीम्" इत्यादि

अयोध्याकाड ७।७

"जातरूपमयैर्मुख्यैरगदै कुण्डलै शुभै।
सहेमसूत्रैर्मणिभी केयूरैर्वलयैरपि। इत्यादि

अयोध्याकाड ३२।५

"दान्तकाञ्चनचित्रागैर्वैदूर्यैश्च वरासनै।
महार्हास्तरणोपेतैरुपपन्न महाधनै। इत्यादि

सुन्दरकाड १०।२

"रौक्मेषु च विशालेषु भाजनेष्वप्यभक्षितान्।
ददर्श कपिशार्दुलो मयूरान् कुक्कुटॉस्तथा।

सुन्दरकाड ११।१५

ऐसा जान पडता है कि पेशेवालों की पंचायतें भी उस समय अवश्य थी। जो पंचायत का सभापति होता 'श्रेष्ठ' कहलाता था।[1]

खेती के काम मे स्त्रियों का भी भाग था। खेती का काम इतना पवित्र समझा जाता था कि उसके लिए यज्ञ करने मे स्त्री पुरुष दोनों शामिल होते थे।[2] जहाँ पुरुष अन्न उपजाता था वहाँ किसान की स्त्री अन्न के काम को पूरा करती थी। उसके स्वादिष्ट भोजन तैयार करती थी। अन्नपूर्णा देवी का आदर्श पालन करती थी।

भारत के जगलों से लाक्षा आदि रंगने की सामग्री किसान लोग इकट्ठी करके काम मे लाते थे और इसका व्यापार इतना बढा-चढा

"ता रत्नवसनोपेतॉ गोष्ठागारावतसिकाम्।
यन्त्रागारस्तनीमृद्धा प्रमदामिव भूपिताम्।
सुन्दरकाड ३ । १८

१ अथर्व वेद, १।९।३, शतपथ ब्राह्मण, १३।७।१।१, ऐतरेय ब्राह्मण, १३।३९।३, ४।२५।८–९।, ७।१८।८, छान्दोग्य उपनिषद्, ५।२।६, कौपीतकी उपनिपद ४।२०, २।६, ४।१५।, बृहदारण्यकोपनिपद १।४।१२।

२ येनेन्द्राय समभर, पयास्युत्तमेन ब्रह्मणा जातवेद ।
तेन त्वमग्रे इहवर्धयेम सजाताना श्रैष्ठ्य आधेह्येनम् ॥ अथर्व १।९।३

हे अग्ने ! जिस मन्त्र से तू देवताओ को उत्तम अन्न प्राप्त कराता है उसी मन्त्र से इस पुरुष को "श्रेष्ठ" पद का अधिकारी बना।

"श्रेष्ठो राजाधिपति समाज्यैष्ठचँ श्रैष्ठ्यँ राज्यमाधिपत्य गमयत्वहमेवेद सर्वमसानीति"। छान्दोग्य अध्याय ५ खण्ड ६०। मत्र का अर्थ स्पष्ट है।

"श्रैष्ठ्य स्वाराज्य पर्येति" ४।२०, "भूतानि श्रैष्ठ्याय युज्यन्ते" २।६ "इद श्रैष्ठ्याय यम्यते" ४।१५ कौपीतकी ब्राह्मणोपनिपत् ॥ अर्थ स्पष्ट है।

"श्रेयास हिसित्वेति" १।४।१२ बृहदारण्यकोपनिषत्।

था कि भारत से बाहर के देशों मे भी रंग की सामग्री विकने को जाया करती थी।

गाँव में अन्न, पशु, आदि से वदलकर और जरूरत की चीजे लेने की चाल तव भी थी जैसी कि आज अन्न से वदल कर लेने की चाल बाकी है। वदलने की यह रीति उस समय इसलिए प्रचलित न थी कि उस समय सिक्कों का चलन न था। सिक्कों का तो उस समय सतजुग से प्रचार चला आया था। हिरण्यपिण्ड निष्क, शतमान, सुवर्ण इत्यादि सोने के सिक्के थे। कृष्णाल,एक छोटा सिक्का था, जिसमे एक रत्ती सोना होता था।[1] बात यह है कि उस समय गौएँ सस्ती थीं और उनके पालने का खर्च वहुत नहीं था। गौओं की संतान सहज ही वढती थी और उत्तम से उत्तम पोषक भोजन घी, दूध, दही कौडियों के मोल था। अनाज देश मे ही खर्च होता था। रेल की क्राचियों मे लद-लदकर कराँची के वंदरगाह से वाहर नहीं जाता था। इस तरह किसान लोग धनी और सुखी थे और व्यवहार-व्यापार मे सच्ची अदला-वदली से काम लेते थे। उस समय धन और सम्पत्ति का सचा अर्थ समझा जाता था। पर जो भारी-भारी व्यापारी या साहु महाजन थे वे सोने, चाँदी, मोती, मूंगे और रत्नों को इकट्ठा करते थे। राजा और राज कर्मचारी भी अमीर होते थे, जिनके पास सोने, चादी और रत्नों के सामान वहुत होते थे। परंतु ऐसे लोग भारी संख्या मे न थे। भारी संख्या किसानों की ही थी।

१ शतपथ ब्राह्मण ५।४।३, २४, २६, ५।५।१६ १२।७।२।१३।, १३।२।३।२, तैत्तिरीय ब्राह्मण १।७।६२ और १२।७।७ और १७।६।२

सोना, चाँदी, रत्न, टंक, वंग, सीसा, लोहा, ताँवा, रथ, घोडे, गाय, पशु, नाव, घर, उपजाऊ खेत, दास-दासी इत्यादि इस युग मे धन, सम्पत्ति की वस्तुयें समझी जाती थीं। जहाँ कहीं ब्राह्मणों के दान पाने की चर्चा है वहाँसे पता लगता है कि उस समय धन कितना था और किस तरह वॅट जाता था। राजा जनक ने साधारण दान मे एक-एक बार हजार-हजार गौएँ, वीस-वीस हजार अशर्फियाँ विद्वान् ब्राह्मणों को दी है। एक जगह वर्णन है कि एक भक्त ने ८५ हजार सफेद घोड़े, दस हजार हाथी और अस्सी हजार गहनों से सजी दासियाँ यज्ञ करनेवाले ब्राह्मण को दीं।[1]

इसी युग के सिलसिले मे महाभारत का समय भी आता है। यह द्वापर का अंत और कलियुग के आरंभ मे पडता है। महाभारत के समय मे हिन्दुस्तान के जो राज्य थे उन सवकी राज्य-व्यवस्थाओं मे खेती, व्यापार और उद्योग के बढ़ाने की ओर सरकार की पूरी दृष्टि थी। इस विषय के लिए एक अलग राजविभाग था। सभा पर्व मे नारद ने और बातों के अलावा राजा युधिष्ठिर से यह भी पूछा है कि रोजगार मे सब लोगों के अच्छी तरह से लग जाने पर लोगों का सुख बढ़ता है। इसलिए तेरे राज मे रोजगारवाले विभाग मे अच्छे लोग रक्खे गये है न?" इस अवसर पर रोजगार के अर्थ मे वार्ता शब्द आया है। वार्ता या वृत्ति मे, वैश्यों या किसानों के सभी धन्धे समझे जाते है। श्रीमद्भगवद्गीता मे, जो महाभारत का ही एक अंश

१ छान्दोग्योपनिषद ४।१७।७, ५।१३।१७ और १९, ७।२।४। शतपथ ब्राह्मण ३।४८, तैत्तरीय उपनिषद १।५।१२, बृहदारण्यकोपनिषद ३।३१।१, शतपथ ब्राह्मण २।६।३।९, ४।१।११, ४।३।४।६, तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।१२।५, ११-१२

है, भगवान् कृष्ण ने कहा है कि खेती, बनिज और गोपालन ये तीनों धन्धे स्वभाव से ही वैश्यों के लिए है। खेती मे वह सब कारबार शामिल है जो खेती की उपज से सम्बन्ध रखते है। और गोरक्षा मे पशुपालन का सारा कारबार शामिल है। इसी तरह बनिज मे सब तरह का लेनदेन और साहूकारी शामिल है इन सबका नाम उस समय वार्ता था, और आजकल अर्थशास्त्र है।[1]

२. द्वापर का अन्त

महाभारत काल मे व्यवहार और उद्योग-धन्धों पर लिखते हुए-श्री० चिन्तामणि विनायक वैद्य ने अपने अपूर्व ग्रंथ 'महाभारत-मीमांसा' में खेती और बागीचे के सम्बन्ध मे जो कुछ लिखा है वह हिन्दी में ही है इसलिए यहाँ हम उसे ज्यों का त्यों दे देते हैः—

"महाभारत काल में "आजकल की तरह लोगो का मुख्य धन्धा खेती ही था और आजकल इस धन्धे का जितना उत्कर्ष हो चुका है, कम-से-कम उतना तो महाभारत काल में भी हो चुका था। आजकल जितने प्रकार के अनाज उत्पन्न किये जाते हैं वे सब उस समय भी उत्पन्न किये जाते थे। खेती की रीति आजकल की तरह थी। वर्षा के अभाव के समय बडे-बडे तालाब बनाकर लोगो को पानी देना सरकार का आवश्यक कर्तव्य समझा जाता था। नारद ने युधिष्ठिर से प्रश्न

१ कच्चित्स्वनुष्ठिता तात वार्ता ते साधुभिर्जनैः ।
वार्तायां सश्रिते नून लोकोय सुखमेवते ॥

—महाभारत, सभापर्व

उस समय मे विद्या के चार विभाग थे। त्रयी, दडनीति, वार्ता और आन्वीक्षिकी। त्रयी, वेद को कहते थे। दड नीति, धर्मशास्त्र था। और आन्वीक्षिकी, मोक्ष शास्त्र या वेदात था। वार्ता, अर्थशास्त्र था।

किया है कि 'तेरे राज्य में खेती वर्षा पर तो अवलबित नही है न ? तूने अपने राज्य में योग्य स्थानो पर तालाब बनाये है न ?' यह बतलाने की आवश्यकता नही कि पानी दिये हुए खेतो की फसल विशेष महत्व की होती थी। उस जमाने में ऊख, नीलि (नील) और अन्य वनस्पतियो के रगो की पैदावार भी सीचे हुए खेतो में की जाती थी। (बाहर के इतिहासो से अनुमान होता है कि उस समय अफीम की उत्पत्ति और खेती नही होती रही होगी।) उस समय बडे-बडे पेडो के बागीचे लगाने की ओर विशेष प्रवृत्ति थी और खासकर ऐसे बागीचो में आम के पेड लगाये जाते थे। जान पडता है कि उस समय थोडे अर्थात् पाँच वर्षो के समय में आम्र वृक्ष में फल लगा लेने की कला मालूम था। यह उदाहरण एक स्थान पर द्रोण पर्व में दिया गया है। 'फल लगे हुए पाँच वर्ष के आम के बागीचे को जैसे भग्न करे'[१] इस उपमा से आजकल के छोटे-छोटे कलमी आम के बागीचो की कल्पना होती है। यह स्वाभाविक बात है कि महाभारत में खेती के सम्बन्ध में थोडा ही उल्लेख हुआ है। इसके आधार पर जो बाते मालूम हो सकती है वे उपर दी गई है। × × × किसानो को सरकार की ओर से बीज मिलता था, और चार महीनो की जीविका के लिए अनाज उसे मिलता था, जिसे आवश्यकता होती थी। किसानो को सरकार अथवा साहूकार से जो ऋण दिया जाता था, उसका ब्याज फी सैकडे एक रुपये से अधिक नही होता था। खेती के बाद दूसरा महत्व का धधा गोरक्षा का था। जगलो में गाय चरानें के खुले साधन रहने के कारण यह धधा खूब चलता था। चारण लोगो को बैलो की बडी आवश्यकता होती थी, क्योकि उस जमाने में माल लाने

१ चूतारामो यथाभग्न पचवर्प फलोपग ।

लेजाने का सब काम बैलो से होता था। गाय के दूध-दही की भी बडी आवश्यकता रहती थी। इसके सिवा गाय के सम्बन्ध में पूज्य बुद्धि रहने के कारण सब लोग उन्हे अपने घर में भी अवश्य पालते थे। जब विराट राजा के पास सहदेव ततिपाल नामक ग्वाला बनकर गया था, तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[१] उससे मालूम होता है कि महाभारत-काल में जानवरो के बारे में बहुत कुछ ज्ञान रहा होगा। अजाविक अर्थात् बकरो भेडो का भी बडा प्रतिपालन होता था। "जाबालि" शब्द "अजापाल" से बना। उस समय हाथी और घोडो के सम्बन्ध की विद्या को भी लोग अच्छी तरह जानते थे। जब नकुल विराट राजा के पास ग्रथिक नाम का चाबुक-सवार बनकर गया था तब उसने अपने ज्ञान का वर्णन किया था।[२] उसने कहा "मैं घोडो का लक्षण, उन्हे सिखलाना, बुरे घोडो का दोष दूर करना और रोगी घोडो की दवा करना जानता हूँ।" महाभारत में अश्वशास्त्र अर्थात् शालिहोत्र का उल्लेख है। अश्व और गज के सम्बन्ध में महाभारत-काल में कोई ग्रंथ अवश्य रहा होगा। नारद का प्रश्न है कि "तू गजसूत्र, अश्वसूत्र, रथसूत्र इत्यादि का अभ्यास करता है न ?" मालूम होता है कि प्राचीन काल में बैल, घोडे और हाथी के सम्बन्ध में बहुत अभ्यास हो चुका था और उनकी रोगचिकित्सा का भी ज्ञान बहुत बढा-चढा था।[३]

१ क्षिप्र च गावो बहुला भवति। न तासु रोगो भवतीह कश्चन ॥

२ अश्वाना प्रकृति वेद्भि विनय चापि सर्वश ।
दुष्टाना प्रतिपत्ति च कृत्स्न च विचिकित्सितम् ॥

३ त्रि प्रसृतमद शुष्मी षष्ठिवर्षी मतगराट् ॥८॥
म-भा सभापर्व, अ० १५१

महाभारत-मीमासा मे ऊपर की लिखी बातों से यह जाहिर है कि द्वापर के अंत और कलियुग के आरंभवाले समय मे गाँव के रहनेवाले किसान सुखी और धनी थे। उनकी दशा आजकल की-सी न थी। उनके पास अन्न-धन की बहुतायत थी। वे अपना उपजाया खाते और अपना बनाया पहनते थे। बकरा, भेड़, आग और धरती बेचने की चीजे नहीं थी।[१] जान पडता है कि उस समय तक खेतों के रेहन और बय करने की प्रथा नहीं चली थी। इस रीति का आरम्भ चन्द्रगुप्त के समय से ज्ञान पड़ता है। उस समय भी यह अधिकार सबको नहीं मिला था। मुसलमानों के समय मे रेहन और बय करने की रीति जोरों से चल पड़ी, और सवत् १८४४ में तो कम्पनी सरकार ने नियम बना दिया, कि कानूनगो के यहाँ रजिस्ट्री कराके जमोदार अपनी जमीन रेहन या बय करा सकता है।

साठवे वर्ष मे हाथी का पूर्ण विकास अर्थात् यौवन होता है और उस समय उसके तीन स्थानो से मद टपकता है। कानो के पीछे, गडस्थलो से और गुह्य देश मे। महाभारत के जमाने की यह जानकारी महत्वपूर्ण है। इससे विदित होता है कि उस समय हाथी के सम्बन्ध का ज्ञान कितना पूर्ण था।

१ अजोऽग्निर्वरुणो मेष सूर्य्योऽश्व पृथिवी विराट्।
धेनुर्यज्ञश्च सोमश्च न विक्रेया कथञ्चन। —महाभारत

: ३ :

कलजुग का प्रवेश

१. बौद्धकाल

कलजुग के आरम्भ के हजार-डेढ हजार बरस तक वही दशा समझनी चाहिए जो महाभात के आधार पर मीमासा मे दी गई है। आज से लगभग ढाई हजार वरस पहले भगवान बुद्ध का समय था। गाँव के सम्बन्ध मे बुद्धमत के ग्रंथों मे से बहुत सी वाते निकाली जा सकती है। उनसे यह पता चलता है कि भारत का समाज उस काल मे भी देहाती ही था। किसान लोग अपने-अपने खेत के मालिक थे और गाँव के किसानों की एक जाति सी बनी हुई थी। अलगायी हुई भारी-भारी रियासते, जमींदारियाँ या ताल्लुके न थे। एक जातक मे लिखा है कि जब राजा विदेह ने संसार छोडकर सन्यास ले लिया तो उन्होंने सात योजनों की अपनी राजधानी मिथिला छोडी और सोलह हजार गाँव का अपना राज छोडा। इससे पता चलता है कि सोलह हजार गाँववाले राज्य के भीतर मिथिला नामका एक ही शहर था। उस समय गाँवों के मुकावले शहरों की संख्या इतनी थोडी थी कि अगर हम एक लाख गाँवों के पीछे सात शहरों का औसत मानले और यह भी मानले कि आज कल की तरह सारे भारत मे सात लाख से ज्यादा गाँव नहीं थे तो सारे भारत मे उस समय शहरों की कुल गिनती,पचास से अधिक नहीं ठहरती।

शहर की लम्बाई-चौडाई भी इतनी ज्यादा वर्णन की गई है कि उसमे न केवल लम्बे-चौड़े मुहल्ले शामिल होंगे बल्कि आस-पास के गाँव भी जरूर मिल गये होंगे। आज भी हमारे शहरों में बड़े-बड़े गाव और क़स्बे मिल ही जाते है। जातकों मे गाँवों के रहनेवालों की सख्या तीस परिवारों से लेकर एक हजार परिवारों तक थी और एक परिवार की गिनती मे दादा, दादी, माँ, बाप, चाचा, चाची. बेटे बेटी, बहुएँ और पोते, पोती, नाती, नतिनी, जितने रसोई के भीतर भोजन करते थे, सब शामिल थे। जिस तरह आज मिले-जुले परिवार गाँव मे रहते है उसी तरह पहले भी रहा करते थे, और जैसे आज यह नहीं कहा जासकता कि हम इतनी ही बड़ी बस्ती को गाँव कहेगे उसी तरह तब भी गाँव की कोई नपी तुली परिभापा न थी।[१]

जब कभी कोई महत्व के सार्वजनिक काम पडते थे तो गाँव के सब लोग मिलकर उसमे उचित भाग लेने का निश्चय कर लेते थे। गाँव का एक मुखिया होता था जिसे 'भोजक' कहते थे। भोजक को कुछ कर और दंड मिल जाया करता था। गाँव के सब रहनेवाले मिल कर सलाह करते थे। उसमे भोजक भी शामिल होता था। एक जातक मे लिखा है कि बोधिसत्व और गाँववाले मिलकर रम्बे और फावड़े लेकर फिरे। गलियों और सडकों मे जहाँ-कहीं पत्थर या रोड़े थे रम्बों से निकालकर किनारे लगाते गये और जो बेमौक़े राह मे पेड पडते थे, जिनसे रथों के और गाड़ियों के चलने मे रुकावट होती थी, उन्हे फरसों से काट डाला, ऊंची नीची, उबड-खाबड

१ जातक ३।३६५, ४।३३०, विनयपिटक, कुल्ल ५, अध्याय ५।१२, जातक १।१०६,

जगहों को बराबर कर डाला। उन्होंने सडके ठीक कर डाली, पानी के तालाब बना डाले और एक बडा दालान तैयार कर डाला, परन्तु उसकी छत के लिए उनके पास सामान न था। वह एक देवी के पास था, जिससे मोल लेने को उनके पास धन न था। पर उनके काम मे शरीक होने को वह राजी हो गई और उन्हे वह सब सामान मिल गया। इस कथा से यह प्रकट है कि उस समय के धार्मिक नेता भी गाँव का सुधार कराने के लिए गाँववालों के साथ मिलकर काम करने मे शामिल हो जाते थे। साथ ही उस समय गाँव वालों के मन मे ऐसा भाव भी था कि अपने खेत मे मोटे से मोटा काम करने मे किसी तरह की हेठी न थी, पर राजा के यहाँ जाकर बेगार करना नीच काम था।[१]

ग्राम जो जनपद एक अंश था, या सोमा पर होता था या शहर के पास होता था। उसके चारों ओर खेत और गोचर भूमि, वन और उपवन होता था। आज भी आनन्दवन, प्रमोदवन, सीतावन, वृन्दावन आदि वनों के नाम जहाँ-तहाँ बस्तियों मे भी पाये जाते है। सारन, चम्पारन, सहारनपुर आदि मे अरण्य का पता लगता है। इन वनों और अरण्यों मे जंगली जानवर और जगली आदमी भी रहते थे और तपस्वी, सन्यासी अपनी कुटी बनाकर गाँव से दूर रहा करते थे। जंगल प्रायः सबकी सम्पत्ति होती थी। परन्तु कोई-कोई जंगल जो राजधानी से जुड़े हुए होते थे राजा के अधिकार मे समझे जाते थे। लोग जगलों से लकडियाँ वे रोक-टोक काट लाते थे और बेचते भी थे। गोचर भूमि मे लोग अपने पशुओं को चरने के लिए छोड देते थे या कोई चरवाहा होता था जो थोडी मजूरी पर

१ जातक १।१९९, १।३४३

सबके पशु चराया करता था और चौमासे भर जंगलों मे रहता और पशुओं की रक्षा करता था।[1]

इस काल मे गांव के चारों तरफ़ कहीं-कहीं दीवारें भी होती थी और गाँव के फाटक भी हुआ करते थे। खेतों मे बाड लगी होती थीं। जाल भी तने होते थे और खेतों के पहरेदार भी होते थे और हर गृहस्थ की जोत के चारों ओर नाली से सीमा बँधी होती थी। नालियाँ अक्सर साझे की हुआ करती थीं जिनसे दोनों ओर के खेत साझे मे सीचे जाते थे। ये नालियाँ और गड्ढे, जिनमे पानी इकट्ठा किया जाता था, सभी रूप और आकार के होते थे। यह ठीक पता नही लगता कि किस प्राँत मे, औसत जोत का कितना वर्गफल ठहरता था पर जातकों से यह पता चलता है कि एक-एक ब्राह्मण के पास हजार-हजार करीसों (बीघों) की खेती थी। एक ब्राह्मण काशी भारद्वाज—के यहाँ पाच सो हलों की खेती होती थी। और वह मजूरों से हल जुतवाता था।[2]

इस युग मे लोग दुख भरे शहरों मे रहना इस लोक और पर-लोक दोनों के लिए बुरा समझते थे। एक जगह लिखा है कि धूल भरे शहर मे जो रहता है वह मोक्ष नहीं पासकता, और दूसरी जगह लिखा है कि शहर मे कभी पवित्र मत्रों का उच्चारण न करना चाहिए[3]। सूत्रों मे शहर के रहनेवाले के लिए कोई संस्कार, यज्ञ

१ जातक १।३१७।, ५।१०३, १।३८८, ३।१४९, ३।४०१, १।२४०, ४।३२६, १।१९४, १।३

२ जातक १।२३९, २।७६।१३५, ३।७, ४।३७०, १।२१५, १।१४३।१५४, २।११०, ४।२७७, ८।१६७, १।३३६, ५।४१२, २।३५७, १।२७७, ३।१६२, ३।२९३, ४।२७६, २।१६५।३००,

३ आपस्तब धर्मसूत्र, १।३२।२१, बौध्यायनसूत्र, २।३।६.३३

या विधि नही दी हुई है। परन्तु किसानों के लिए पद-पद पर रीतियाँ और विधियाँ दी हुई है। हल जोतने के समय अशनि, सीता, अरदा, पर्जन्य, इन्द्र और भग के नाम से हवन कराया जाता था। बोने के समय, काटने के समय, दंवाने के समय और नये अन्न को लाने के समय यज्ञ कराये जाते थे। यह सब किसानों की क्रिया थी। वार-बार यह आदेश दिया गया है कि चौरस्ते पर, भिटे पर, वल्मीकों (बाबियों) पर, गाँव से बाहर निकलकर यज्ञ या पूजा करनी चाहिए। यह गाँव के रहनेवाले गृहस्थों और विद्वानों के लिए भी आदेश है। शहर के रहनेवालों के लिए नही[1]। अंग्रेजी के (Buddhist India) "बुद्ध कालीन भारत" नामक ग्रंथ मे मालूम होता है कि बौद्ध साहित्य से उस समय के केवल बीस शहरों का पता लगता है जिनमे से ये छः महानगर कहे गये है--श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, साकेत, कौशाम्बी और बनारस। कुशीनारा, को जहाँ बुद्ध भगवान् ने शरीर त्याग किया है, थेर आनन्द ने जंगल का एक छोटा सा कस्बा लिखा है। पाटलिपुत्र अर्थात् आजकल के पटना का उस समय तक पता न था।

राजा को खेत की उपज मे से वार्षिक दसवाँ भाग तक कर मिलता था। वह इतने के लिए ही भू-पति समझा जाता था। जो कुछ पैदावार होती थी, उसे गाँव का मुखिया भोजक या सरकारी कर्मचारी महामात्य या तो खलियान के सामने नाप लेता था या खड़ी फसल को देखकर अटकल कर लिया जाता था। कभी-कभी सरकार इस कर को बढ़ाकर किसी-किसी कारण से आठवाँ या छठा अंश तक भी कर देती थी। किसी-किसी का यह कर राजा छोड भी देता था, या किसी समूह या गाँव को मुक्त भी कर देता

१ गोभिल गृह्यसूत्र ४।४।२८,–३०, ३।५।३२–३५

था। यह तो राजाओं की बात हुई जिनके कर उगाहने की चर्चा पोथियो मे आई। परंतु पंचायती राज जहाँ-जहाँ थे वहाँ-वहाँ कर उगाहने की कोई चर्चा नहीं है। एक-आध जगह पंचायती राज मे चदे की तरह कर उगाहने की चर्चा भले ही है। एक जगह लिखा है कि मल्लों के पंचायती राज मे पंचों ने यह आज्ञा निकाली थी कि जब बुद्ध भगवान् अपनी यात्रा मे बस्ती के पास आवे तो हर आदमी को उनका स्वागत करने के लिए जाना चाहिए। जो न जायगा उसको पाँचसौ रुपये दण्ड के होंगे।[१] यद्यपि जगल पर सार्वजनिक अधिकार था तथापि राजा को जब जरूरत पडती थी तब वह जगल की जमीन को बेच सकता था और वह अपनी जायदाद में खेती करनेवाले मजूरों और किसानों से बेगार भी ले सकता था। कहीं-कहीं के किसान गाववाले राजा के लिए हरिण के जगल घेर रखते थे कि उन्हे समय-कुसमय शिकार हाँकने के लिए काम-धाम छुडाकर बुलाया न जाय।

उस समय मगध के राज मे भूमि बेची नहीं जासकती थी पर दान दी जासकती थी। कोसल के राज मे बेची भी जा सकती थी। जिस भूमि मे बाड नहीं लगी होती थी उसमे सब लोग अपने पशु चरा सकते थे, लकडी काट सकते थे, फूल चुन सकते थे, फल तोड सकते थे। खेती के नियम कड़े थे, परंतु अच्छे थे और विवेक से भरे थे। मिल्कियत सिद्ध करने के लिए दस्तावेज (कागज पत्र), गवाह और कब्जा प्रमाण माने जाते थे।[२]

१ विनय पिटक १।२४७

२ जातक ४।२८१, विनयपिटक २।१५८, आपस्तम्व २।११।२८ (१)१।६।१८(२०), गौतम १२।२८, १२।१४-१७, वशिष्ठ सूत्र १६।१९

यूनानी लेखकों से पता चलता है कि उस समय भी सियारी और उन्हारी की--रबी और खरीफ की--दो फसले होती थी और जिस तरह आजकल अनाज की खेती होती है उसी तरह तब भी होती थी। जो अनाज आज उपजते है वही तब भी उपजते थे। गन्ने की खेती होती थी और खडसाले चलती थीं। इतनी शकर तैयार होती थी कि ससार के बाहर के सभी सभ्य देशों मे यहाँ से शकर जाती थी।[१] सुन्दर और बारीक कपड़े, कपास, ऊन, रेशम, छाल आदि सभी तरह के इस समय भी बनते थे और जंगल की औपधियाँ और तरह-तरह का माल अब भी उसी तरह काम मे आता था। वाणिज्य व्यापार उसी तरह बढा-चढ़ा था। जो बाते हम पिछले अध्याय मे लिख आये है उन बातों का, विदेशियों के बयान से, इस काल मे बहुत ऊँची अवस्था मे होना पाया जाता है। बौद्ध मत का प्रचार भारत के बाहर के देशों मे इसी समय मे शुरु हुआ। आना-जाना, बनिज-व्यापार पहले से ज्यादा बढ गया। यहाँ के बने कपड़े शकर, चित्रकारी मूर्तियाँ हाथी दाँत की बनी सुन्दर चीजे, मसाले आदि भाँति-भाँति की वस्तुये भारत से बाहर बडी मात्रा मे जाती थीं और यहाँकी सभ्यता और धन सम्पति की कहानी सुनाती थीं।

दुर्भिक्षों के बारे मे जहाँ अपने यहाँ के ग्रन्थों मे चर्चा आया करती है वहाँ मेगस्थनीज जैसे विदेशी कहते है कि भारतवर्ष मे अकाल कभी पडता ही नही। इससे यह अटकल लगायी जा सकती है कि अकाल पड़ते थे जरूर, परतु बहुत जल्दी-जल्दी नहीं पड़ते थे

१ स्ट्राबो १५सी—६९३, मेगेस्थनीज खण्ड ९। स्ट्राबो १५सी ६९० मे ६९२ तक।

और जहाँ-कहीं पडते थे वहीं उनका प्रभाव रहता था। वह सारे भारत मे फैल नहीं जाते थे।

२. बौद्धकाल का अन्त

जो काल बुद्धावतार पर समाप्त होता है जातकों मे उस काल के सम्बन्ध में एक बड़े महत्व की बात लिखी पाई जाती है। इस समय प्रायः सभी कारीगरी और कलाओं की पचायतें संगठित थीं। 'मूगपक्ख' जातक (४।४११) मे इस तरह की अट्ठारह पंचायतों की चर्चा है जिनमे से बढइयों, लुहारों, खाल सिझानेवालों और चित्रकारों की पंचायतों का विशेष उल्लेख है। परंतु 'प्राचीन भारत के आर्थिक इतिहास' (पृ० १०१) में लिखा है—"डाक्टर मजूमदार ने इस काल के जातको और धर्मग्रथो से पता लगाया है कि इन नौ प्रकार के पेशेवालो की पचायते सगठित थीं—(१) काठ के काम करनेंवाले, जिनमें नाव बनानेवाले शामिल थे (२) धातु के काम करनेवाले, जिन में सोना-चादी साफ करनेवाले शामिल थे (३) माली (४) चित्रकार (५) बनजारे[१] (६) साहूकारी करनेवाले (७) खेती करनेवाले (८) व्यापार करनेवाले (९) पशु-पालन करनेवाले"।[२] एक जातक मे (२।१८) लिखा है कि एक जगह लकडी के काम का भारी केंद्र था जिसमे एक हजार परिवार रहते थे। इनकी दो बराबर-बराबर पंचायतें थीं और हर पंचायत का सरपच जेट्ठक कहलाता था (जेट्ठक का अर्थ है बडा भाई)। इन पंचायतों मे तीन विशेषतायें थीं। (१) सरपंच एक जेट्ठक होता था (२) पेशा अपने कुल का

१ जातक ६। ४२७, जातक न० ४१५, जातक २। २९५

२ गौतम के सूत्र ११।२१

चलता था और (३) धन्धा अपनी जगह मे बँध जाता था, (या यों कहना चाहिए कि खास-खास धन्धों के लिए खास-खास जगहे प्रसिद्ध हो जाती थीं।) जातकों से मालूम होता है (२।१२।५२ और ३।२८१) कि पचायत का सरपंच राज-दर्बार मे रहनेवाला एक बडा मंत्री होता था। जेट्ठक के सिवाय सरपंच को 'पमुक' (प्रमुख या सभापति)" भी कहते थे।

बनारस के राज की यह विशेपता मालूम होती है कि उस समय पंचायत के सरपंच काशिराज के बड़े कृपापात्र होते थे। एक सरपंच तो सारे राज्य का कोपाध्यक्ष ही था।[१] ऐसा अनुमान होता है कि उस समय जो थोड़े से बड़े-बड़े शहर थे उनके आसपास के गाँवों मे कारीगरी और कलाओं के काम बढ़े-चढ़े थे। रोजगार इतना बढ गया था कि शहर के पास के गाँवों मे किसान लोग खेती के सिवाय हाथ की कलाओं मे भी दक्ष हो गये थे। हम जातकों मे बारम्बार ऐसे गाँवों का वर्णन पाते हैं जैसे लुहारों के गाँव जिनमे एक हजार घर लुहारों के ही थे। इसी तरह ऐसे गाँव भी थे जिनमे पाँच-पाँच सौ घर बढ़इयों के थे। इसी प्रकार कुम्हारों के भी गाँव के गाँव बसे हुए थे। इसी तरह व्याधगाम, निषाधगाम इत्यादि पेशेवरों के नाम से भी गाँव बसे थे।[२] इन गाँवों के पेशेवाले शहर मे रहनेवाले पेशे वालों से भिन्न थे। वे किसान भी थे और लुहारी भी करते थे। बढई भी थे और खेती भी करते थे। खेती के काम मे उनका सारा समय नही लगता था। वे खेती का सारा काम अपने हाथों से करते

१ जातक ३।३८७, जातक २।१२।५२

२ जातक ३।२८१-६, जातक २।१८।४०५, जातक ३।३७६।५०८, जातक ६।७१, ३।४९,

थे तो भी उन्हे पेशे का काम करने के लिए काफी समय मिल जाता था, और जिनका पेशे का कारवार वहुत वढा हुआ था वे मजूरों से काम लेते थे। जान पडता है कि उस समय वेकारी की वीमारी न थी।

ये पंचायतें कानून वनाती थीं, मुकदमे फैसले करती थीं और जो कुछ फैसला होता था, उसको व्यवहार मे लाना भी उन्हींका काम था। विनयपिटक मे लिखा है कि किसी चोर स्त्री को तवतक सन्यासिनी वनाये जाने का अधिकार नही है जवतक पचायतों की ओर से आज्ञा न मिल जाय। जो लोग पंचायत मे शामिल होते थे उनके घरेलू झगड़े भी, स्त्री-पुरुप का वैमनस्य भी, पंचायत के सामने आता था और पंचायत निवटारा करती थी।[1]

किसी लेख से ऐसा नहीं मालूम होता कि उस काल मे खेती का काम कोई नीच काम समझा जाता हो। खेती करनेवाला अपने समाज मे खेती करने के कारण अपमानित नहीं समझा जाता था। इसमे तो संदेह नहीं है कि खेती, व्यापार और पशुपालन वैश्यों का ही काम था और जो ब्राह्मण पुरोहिती का काम करते थे या जो पढाने का काम करते वे खेती नहीं करते थे। पर ऐसे ब्राह्मण भी थे, जो न तो पुरोहिती का काम जानते थे और न विद्या ही पढे होते थे। ऐसे ब्राह्मणों के लिए सवसे उत्तम काम खेती थी, मध्यम काम वनियई थी। सेवा का काम सवसे नीच काम था और भीख तो वही माँगता था जो गया गुजरा अपाहिज था। क्षत्रिय का काम भी राजदरवार या सेना और पुलिस का था। परन्तु जिन्हे इस तरह का काम न मिलता था वे लाचार होकर वैश्य या शूद्र का काम करने लग जाते थे। राजा ययाति की कथा सतजुग की है। यह प्रसिद्ध है

१ विनयपिटक ४।२२६, गौतम, ११।२१,

कि उन्होंने अपने कई बेटों को राज के काम से अनधिकारी बना दिया। उनके वंशवाले लाचार होकर वैश्य और शूद्र का काम करने लगे। नन्द और वृषभानु आदि गोपालक ऐसे ही अधिकारहीन किये हुए यादव थे। परन्तु वैश्य द्विजाति थे और द्विजातियों के सभी अधिकार इन्हें प्राप्त थे और जो ब्राह्मण या क्षत्रिय जन्म से यह (वैश्यों का) काम करने लगते थे उन्हें कोई नीच नही समझता था। उनका सम्मान भी ब्राह्मण और क्षत्रिय की तरह ही होता था।[१] यद्यपि वे ब्राह्मणत्व और क्षत्रियत्व से गिरे हुए समझे जाते थे तो भी वैश्यों का काम उठा लेने से कोई उन्हे ताने नहीं देता था और किसी तरह का अपमान नहीं होता था। जातकों और सूत्रों मे ऐसे ब्राह्मणों की चर्चा बहुत आई है जो खेती करते है, गौएँ चराते है, बकरी का रोजगार करते है, वनिये का काम करते है, शिकार खेलते है, बढ़ई और लुहार का काम करते है, जुलाहे का काम करते है, बाण चलाते है, वनजारों की रक्षा करते है, रथ हाँकते है और सँपेरे का काम करते है।[२] इस तरह के ब्राह्मणों और क्षत्रियों के वंशवाले उस समय के वैश्य और शूद्र वशवालों से ऐसे मिलजुल गये और रोटी-बेटी का ऐसा घना सम्बन्ध हो गया कि आज इन पेशेवालों मे से यह भेद करना मुश्किल हो गया है कि कौन ब्राह्मण है, कौन क्षत्रिय है और कौन वैश्य। यह भेद तो उन्हींमे देखा जाता है जो हाल के ही पतित है। अनगिनतियों ब्राह्मण और क्षत्रिय आज किसान का काम करते हैं और अपने को किसान कहने और मानने मे उन्हे

१ सुत्तनिपात ३।९, मज्झिम निकाय २।१८०, जातक ४।३६३

२ जातक २।१६५, ३।२९३, ४।१६७-२७६।, ३।४०१, ४।१५; ५।२२-४७१, २।२००, ६।१७०, ४।२०७, ४५७, ५।१२७;

उचित गर्व है, वे उसे पतन नहीं मानते। उस काल मे भी यही भाव सवसे ऊपर था। कहीं-कहीं ब्राह्मण किसान वडा पवित्र आत्मा और भक्त समझा जाता था। एडी से चोटी तक वोधिसत्व गिना जाता था।[१] "उत्तम खेती, मध्यम वान, निर्धिन सेवा भीख निदान" यह आजकल की प्रसिद्ध कहावत उस समय भी ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए राह दिखानेवाली थी।

उस काल मे मजूर और शूद्र दो तरह के थे। एक तो किसान आप ही मजूरी करते थे, दूसरे वह मजूर भी थे जिनके पास खेत न थे। जो मजूरी या नौकरी के सिवाय जीविका का और कोई उपाय न रखते थे, वे लकड़ी काटते थे, पानी भरते थे, हल जोतते थे और सेवा के सव तरह के काम करते थे। वड़े-वड़े खेतिहर अपने यहाँ मजूर रखकर खेती का काम कराते थे। मजूरी सव तरह की दी जाती थी। भोजन, कपडा और रुपये सवकी चाल थी। इन दो प्रकारों के सिवाय मजूरों का एक तीसरा प्रकार भी था। कैदी, ऋणी और प्राणदड के वदले काम करनेवाले और अपने आप अपने को वेच देनेवाले या न्यायालय से दंड पाकर काम करनेवाले दास या दासी अपनी मीयाद भर या जीवन भर गुलामी करते थे। परन्तु ऐसे लोगों की गिनती भारतवर्ष मे वहुत न थी। साधारण मजूरों की अपेक्षा इन दासों के साथ वर्ताव भी अच्छा ही होता था। इनका लाड-प्यार होता था। इन्हे लिखना-पढ़ना और हाथ की कारीगरी भी सीखने का मौका दिया जाता था। कभी-कभी किसीके द्वारा इनके साथ कडाई का वर्ताव भी होता होगा, ऐसा प्रतीत होता है। दास जवतक मुक्त नही हो जाता था, तवतक धर्म सघ मे वह सम्मि-

१ जातक ३।१६२

लित नहीं होने पाता था। शायद इसलिए कि इससे उसके मालिक के काम मे हर्ज होता। इन दासों और दासियों को अपने जीवन से असतोप नहीं था क्योंकि इनके भाग जाने की चर्चा कहीं नहीं पाई जाती।[१] नित्य की मजूरी करनेवाला किसीका गुलाम तो नहीं था तो भी कभी-कभी ऐसे मौके आजाते थे कि उसका जीवन गुलामों की अपेक्षा अधिक कठिन हो जाता था।[२]

उन दिनों रहन-सहन का खर्च कैसा था यह कहना तो मुश्किल है। परन्तु जातकों से यह पता लगता है कि एक धेले के तेल या घी से आदमी का काम भरपूर चल सकता था। आठ कहपान मे एक अच्छा गधा खरीदा जा सकता था। चौबीस मुद्राओं मे एक जोडी बैल मिल जाते थे। अर्द्धमासक आजकल के धेले या पैसे के बराबर समझा जाय और कहपान या कार्शपण अठन्नी के बराबर माना जाय और उपर्युक्त मुद्राये एक-एक रुपये के बराबर मानी जायँ तो उस समय का खर्च आजकल की अपेक्षा बहुत सस्ता समझा जायगा। परन्तु यह बात अनुमान के आधार पर है। सिक्के का वास्तविक मूल्य कब कितना समझा जाना चाहिए यह अर्थशास्त्र का एक जटिल प्रश्न है। इसपर यहाँ विचार करना हमारा उद्देश्य नहीं है।

१ जातक १।४५१, मज्झिम निकाय १।१२५, जातक १।४०२ विनयपिटक १।७६, जातक ५।३१३, ६।५४७

२ जातक १।४२२; ३।४४४

चाणक्य के समय के गाँव

इतिहास लिखनेवालों के निकट बुद्धकाल का अन्त उस समय समझा जाता है जब चन्द्रगुप्त मौर्य गद्दी पर बैठा और शासन की असली बागडोर चाणक्य के हाथ मे आई। इस प्रकाड पण्डित ने 'अर्थ-शास्त्र' नाम की एक पुस्तक लिखी। इस पोथी से उस काल के बारे मे पता लगता है जिसमे मौर्य्य वश का राज हुआ था और जो विक्रम के एकसौ तीस बरस पहले समाप्त होता है। 'अर्थशास्त्र' से मालूम होता है कि गाँवों के कई तरह के विभाग किये गये थे। प्रथम कोटि, मध्यम कोटि और सबसे नीची कोटि के सिवाय ऐसे भी गाँव थे जिन्हे अन्न, पशु, सोना, जगल की पैदावार आदि किसी रूप मे कोई कर नहीं देना पडता था। ऐसे गाँव भी थे जहाँ से कर के बदले बेगार मिलती थी और ऐसे भी थे जिनसे कर के बदले दूध, दही, घी मक्खन आदि मिलते थे।[१] कुछ बातों मे तो सभी गाँव समान थे। हर गाँव मे बड़े-बूढों की एक पचायत होती थी। इस पचायत का जो कोई सरपच होता था वही सरकार की ओर से गाँव का मुखिया माना जाता था। जमींदारी का कोई रिवाज नहीं था। हर किसान अपने खेत का मालिक था। गाँव मे घर सब एक साथ लगे होते थे बीच मे गलियाँ होती थीं। बस्ती के चारों ओर बहुत दूर तक फैली

१ अर्थशास्त्र (पण्डित प्राणनाथ विद्यालकार का उल्था) पृष्ठ १२९, ३९-४१।

हुई नाज की, विशेष रूप से, धान की खेती होती थी। हर गाँव से मिली हुई पशुओं के चरने के लिए गोचर भूमि होती थी जिसका बन्दोबस्त राजा को करना पडता था। गृहस्थों के अपने-अपने पशु अलग होते थे, पर गोचर भूमि सबकी एक ही होती थी। इसी गोचर भूमि मे वे खुले हुए मैदान भी होते थे, जिनमे बनजारे और घूमनेवाली जगली जातियाँ आकर ठहरजाती थीं और आये दिन डेरे डाला करती थी।[१] गाँवों की हदे बँधी हुई थीं। हर गाँव मे चौपाल और दालाने पंचायतों के काम के लिए बनी होती थीं और गाँव का भीतरी अर्थशास्त्र बिलकुल स्वतत्र होता था। गाँव के भीतरी बन्दोबस्त मे किसी बाहरी का हाथ बिलकुल नहीं होता था। गाँववाले सब बातों का निबटारा आप कर लेते थे। घूमनेवाली जातियों या चरवाहों की बस्तियाँ न तो बहुत काल के लिए टिकाऊ होती थीं और न गाँवों की तरह सुसंगठित थीं। गोचर भूमि और गोरक्षा उस समय मे ऐसे महत्व की बात समझी जाती थी कि खेती के अध्यक्ष की तरह राज दरबार मे गोशाला के अध्यक्ष अलग और गोचर भूमियों के अध्यक्ष अलग होते थे।[२] गोशाला के अध्यक्ष को केवल गाय भैंस की ही खबर नहीं लेनी होती थी, बल्कि भेड, बकरियाँ, गधे, सुअर, खच्चर और कुत्तों के लिए भी बदोबस्त करना पड़ता था।

गाँव बसाने के सम्बन्ध मे कौटिल्य के अर्थशास्त्र मे जो नियम दिये हुए है उनसे बहुत कुछ पता चलता है। यहाँ हम पण्डित प्राणनाथजी के अनुवाद से (पृ० ३९-४१) नीचे जो अवतरण देते है उससे उस समय के गाँव की राज्य-व्यवस्था का पता लगता है :—

१ मेगेस्थनीज (अग्रेजी १, ४७)

२. अर्थशास्त्र पृ० ११५-१६, १२८

"परदेश या स्वदेश के निवासियो के द्वारा शून्य या नवीन जन पद को बसाया जाय। प्रत्येक ग्राम सौ परिवार से पाँच सौ परिवार तक का हो। उसमें शूद्र कृषको की सख्या अधिक हो और उनकी सीमा एक कोस से दो कोस तक विस्तृत हो। वह इस प्रकार स्थापित किये जाँय कि एक दूसरे की रक्षा कर सके। नदी, पहाड, जगल, पेड, गुहा, नहर, तालाब, सेंभल, पीपल तथा बड आदि से उनकी सीमा नियत की जाय। आठसौ ग्रामो के मध्य में स्थानीय, चारसौ ग्रामो के मध्य में द्रोणमुख, दोसौ ग्रामो के मध्य में खार्वटिक तथा दस ग्रामो के मध्य में सग्रहण नामक दुर्ग बनाये जायें। राष्ट्र-सीमाओ पर अन्तपाल के दुर्ग खडे किये जायें और प्रत्येक जनपद-द्वार उसके द्वारा सुरक्षित रक्खा जाय। वागुरिक, शबर, पुलिन्द, चडाल तथा जगली लोग शेष सम्पूर्ण सीमा की देख-रेख करे।

ऋत्विक्, आचार्य, पुरोहित तथा श्रोत्रियो को अभिरूप फलदायक "ब्रह्मदेय"[1] दिया जाय और उनको राज्यदड तथा राज्य कर से मुक्त किया जाय। अध्यक्ष, सख्यायक, गोप, स्थानीक, अनीकस्थ, चिकित्सक, अश्व दमक, जघारिक आदि राज-सेवको को भूमि दी जाय परन्तु उनको यह अधिकार न हो कि वह उसको बेच सके या थाती (गिरवी) रख सके। राजस्वदे ने वालो को ऐसे खेत दिये जायें जो कि एक पुरुष के लिए पर्याप्त हो। खेतिहरो को नई भूमि न दी जायें। जो खेती न करे, उनसे खेत छीन कर अन्यो के सिपुर्द किये जायें। ग्राम-भृतक या बनिये ही उनपर खेती

१ ब्रह्मदेय वह दान है जो कि ब्राह्मणो को स्थिर रूप से सदा के लिए देदिया जाय। ताम्र पत्र तथा बहुत से शिलालेख खोदने से मिले है जिनमे पुराने राजाओ ने भिन्न-भिन्न भूमि भागो को ब्रह्मदेय के रूप में ब्राह्मणो को दिया था। (प्राणनाथ विद्यालकार)

करे। जो खेत जोते वे सरकारी हर्जाना (अपहीन) भरे। जो सुगमता से राजस्व दें उनको धान्य, पशु तथा हिरण्य से सहायता पहुँचाई जाय। साथ ही ख़याल रखा जाय कि अनुग्रह[1] तथा परिहार[2] से कोश की वृद्धि हो और जिससे कोश के नुकसान की सभावना हो उसको न किया जाय। क्योकि अल्प कोशवाला राजा नागरिको तथा ग्रामीणो को ही सताता है। नये बन्दोबस्त या अन्य आकस्मिक समय में ही विशेष-विशेष व्यक्तियो को राजस्व से मुक्त किया जाय और जिनका राज्यकर-मुक्ति या परिहार का समय समाप्त हो गया है उनपर पिता के तुल्य अनुग्रह रखा जाय।"

मौर्य्यकाल मे भी देश का सबसे बडा कारबार खेती का था। इस पर सरकार का बहुत बडा ध्यान था। सब तरह के अनाज तो उपजते ही थे साथ ही गन्ने की खेती बहुत जोरों से होती थी। गुड, खाँड, मिश्री सभी कुछ तैयार होता था। अगूर से भी एक प्रकार का मीठा तैयार किया जाता था जिसे मधु कहते थे। खाँड तैयार करने के लिए गाँव-गाँव मे खडसाले थीं।[3] शकर का रोजगार बढा-चढा था। मेगेस्थनीज लिखता है :—

"भारतवर्ष में बडे लम्बे-चोडे अत्यन्त उपजाऊ मैदान है जो

१ अनुग्रह—उत्तम काम करने के बदले मे कारीगरो—किसानो को राजा जो धन आदि इनाम मे दे उसको 'कौटिल्य' ने 'अनुग्रह' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

२ परिहार—राज्य कर से मुक्त करना। पुत्रोत्पत्ति, वर्षगाँठ आदि समय मे राजा लोग ऐसा करते थे, कौटिल्य ने इन सब समयो को 'यथागतक' शब्द से सूचित किया है। (प्रा० वि०)

३ अर्थशास्त्र पृ० ८५, ८६

खेतो से हरे-भरे दीखते हैं और जिनकी सिचाई के लिए नदियो का जाल-सा बिछा दीखता है · जौ, गेहूँ, चावल आदि के सिवाय ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें और मनुष्य और चौपायो के भोजन के योग्य नाना प्रकार के पौधे होते हैं जाडो में और गर्मियो में दो बार बरसात होती है और साल में दो फसले होती हैं। विविध प्रकार के स्वाद और मिठास के कन्द, मूल और फल होते हैं जिनसे मनुष्यो का बहुतायत से पोषण हो सकता है । बुरे-से-बुरे युद्ध में भी किसानो की कोई हानि नहीं होती, फसल को, पशुओ को, खेतो को या पेड़ लतादि को कोई नुकसान नहीं पहुँचता। भारत के किसान बडे मिहनती होते हैं, बडे चतुर होते हैं, किफायत से रहते हैं और ईमानदार होते हैं। सरकारी प्रबध ऐसा अच्छा है कि खेती का व्यापार बडी अच्छी दशा में है। जन, धन की पूरी रक्षा है, न्याय और कानून बडे अच्छे हैं"[1]

मेगस्थनीज के लेख से मालूम होता है कि सिंचाई का प्रवन्ध बडा ही उत्तम था। नहरों का भी एक विभाग था, अर्थशास्त्र से भी इस बात का पूरा समर्थन होता है कि सिंचाई का सरकारी प्रबन्ध था, और जिन लोगों को सरकार की तरफ से जल मिलता था उसके लिए कर देना पडता था। खेती के लिए एक सरकारी अफ़सर अलग था वह सीताध्यक्ष कहलाता था। उसके लिए अर्थशास्त्र पृष्ठ १०४ मे लिखा है—

"सीताध्यक्ष (कृषि का अध्यक्ष या प्रबन्ध कर्ता) कृषि-विज्ञान, गुल्मशास्त्र (झाडियो की विद्या), वृक्ष-विद्या तथा आयुर्वेद में पाण्डित्य

१ 'प्राचीन भारत का इतिहास' नामक ग्रथ मे पृ० १३९ पर का अवतरण।

प्राप्त कर, या उन लोगो से मैत्री कर, जो कि इन विद्याओ में पण्डित है, धान्य, फूल-फल, शाक, कन्द, मूल, पालक, सन, जूट, कपास, बीज आदि समय पर इकट्ठा करे। बहुत हलो से जोती हुई भूमि पर दास, कर्मकर, अपराधी आदियो से बीज डलवाये और हल, कृषि सम्बन्धी उपकरण तथा बैल उनको अपनी ओर से दे तथा काम हो जाने के बाद लौटा ले। तरखान (कर्मार) खटीक (कुट्टाक), तेली, रस्सी बँटनेवाले, बहेरिये लोगो से उनको सहायता पहुँचाये। यदि काम ठीक न हो तो उनसे हरजाना वसूल किया जाय।"

कताई और बुनाई का काम भी मौर्यकाल मे कोई छोटे पैमाने पर नहीं होता था। जिस तरह खेती के विभाग के लिए सरकारी अफसर सीताध्यक्ष होता था उसी तरह कताई-बुनाई के काम पर एक सरकारी अफसर सूत्राध्यक्ष नियुक्त होता था। वह कारीगरों से सूत, कपडा और रस्सी का काम भी करवाता था। उसका काम था कि बैरागिनों, विधवाओं, विकलाँग लडकियों, राज्य दण्डितों, बूढ़ी राजदासियों और मन्दिर के काम से छुटी देवदासियों और साधारणतया सभी लड़कियों से ऊन, रेशे, रुई, जूट सन आदि के सूत कतवाये और सूत की चिकनाहट, मुटाई और उत्तम, मध्यम निकृष्ट दशा देखकर उनका मिहनताना नियत करे। इस तरह सूत की कताई के लिए, उसकी ठीक जाँच के लिए और ठीक-ठीक मजूरी देने के लिए बड़े विस्तार से नियम बने हुए थे।[1] और इसके सम्बन्ध मे अपराधियों के लिए बड़े कड़े-कड़े दण्ड भी थे, जैसे जो मेहनताना लेकर काम न करे उनका अंगूठा काट दिया जाय। यही दण्ड उनको भी मिले जो कि माल खा गई हों, लेकर भाग गई हों या चुरा ले गई

१ कौटिल्य अर्थशास्त्र पृ० १०२, १२३

हों। जान पड़ता है कि कताई के ये नियम राजधानी के पास के गाँव के है जिनका सरकारी विभाग से कपास, रुई और मजूरी पाने का बन्दोवस्त था और यह कानून उन लोगों के लिए था जो उस सरकारी विभाग के लिए कातने को वाध्य किये जा सकते थे। परन्तु औरों को कातने की मनाई न थी। शहर से दूसरे गाँव मे रहनेवाले लोग, बूढ़े, जवान, वच्चे सभी कातते होंगे। क्योंकि पहले तो पहनने के लिए कपड़े सारी आवादी को चाहिए और दूसरे भारत के वाहर से कपड़े के आने की कही चर्चा नहीं है। इसलिए कताई-बुनाई का काम अवश्य ही गाँव मे घर-घर होता था। सरकारी तौर से इस कला का प्रवन्ध यह प्रकट करता है कि कताई और बुनाई का रोजगार खेती-वारी की तरह भारी महत्त्व रखता था। उस समय यह भी कानून था कि किसीके पास खेत हों, और वह खेती न करता हो तो उससे खेत लेकर खेती करनेवाले को दे दिये जायँ। इससे कोई वेकार खेत न रख सकता था।

कोष्ठागाराध्यक्ष के कर्तव्यों की तालिका से[1] पता लगता है कि उस समय खेती के कारबार के साथ ही साथ खण्डसाल के सिवाय, जिसकी चर्चा हम कर चुके है, तिलहनों से तेल निकालने का काम वहुत जोरों से होता था। रग का कारवार भी बहुत चढा-वढा था। यूनानी लेखकों से पता चलता है[2] कि लाख आदि कीडों से पैदा होनेवाले रग भी उस समय निकाले जाते थे और कपड़े रंगने के सिवाय लोग अपनी दाढ़ियाँ भी विविध रंगों मे रंगते थे। कुम्हार लोग वड़े उत्तम-उत्तम प्रकार के वासन बनाते थे। वॅसफोर वाँस

१ कौटिल्य अर्थ शास्त्र (प० आणनाथ) पृ० ८४ से ८८ तक

२ नियारकोस (अग्रजी) खड ९ व १०।

और बेंत और छाल के सब तरह के सामान तैयार करते थे। नदी किनारे के गाँव मे धीमर मछलियाँ मारते थे और समुद्र के किनारे मोती और शंख खोज लाते थे। सूखी मछलियाँ और सूखे माँस के व्यापार की चर्चा से यह भी पता लगता है कि ये चीजें बिकने के लिए बहुत दूर-दूर भेजी जाती होंगी। उस समय आटा भी गाँव से पिस कर शहर मे बड़े भारी परिमाण मे बिकने को आता होगा।

पञ्चायतों का सगठन उस समय इतने महत्त्व का था कि उसके लिए संघ वृत्त नाम का एक अधिकरण ही अर्थशास्त्र मे अलग रखा गया है। इस अधिकरण के पढने से[1] यह जान पड़ता है कि उस समय सघों के अधिकार बहुत बढ़े हुए थे। छोटी-छोटी पचायतों को एकत्र करके लोगों ने संघ बना रखे थे। लिखा है कि काम्बोज, सुराष्ट्र, क्षत्रिय, तथा श्रेणी आदि संघ खेती, पशु-पालन और बनिज से संतुष्ट रहते थे और शस्त्र की जीविका भी करते थे, अर्थात सिपाही का काम भी करते थे। लिच्छविक, वृष्चिक, मद्रक, कुक्कुर, कुरु, पाचाल आदि के संघ भी थे। इनके बारे मे यह लिखा है कि ये लोग राजा शब्द से सन्तुष्ट रहते थे। आगे चलकर भेद-नीति का वर्णन किया है, जिससे पता चलता है कि काम्बोज, सुराष्ट्र आदि बडी चतुर जाति के थे। लिच्छविक आदि नाम पर मोहित होजाते थे। राजा स्वभावतः इन पंचायतों को निर्बल रखने मे अपना अधिक कल्याण समझता था। इसीलिए फोड़-फाँस लगाये रहता था। भेद-नीति का विस्तार करके लिखा है कि जब वह आपस मे जुदा हो जायँ तो उनको तितर-बितर कर दे। या सबको एक ही देश मे बसाकर उनके

१ अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३५ से ३६१ तक

पाँच-पाँच या दस-दस परिवार (कुल) को जोतने-बोने के लिए जमीन दे-दे। राजा शब्द से सन्तुष्ट होनेवालों का राजपुत्रों के अनुरूप शासन बनावे।

राजा को जब आवश्यकता होती थी या जब इसमे वह देश का कल्याण देखता था तो वह नए गाँव बसाता था और नई गोचर-भूमि छुडवाता था। किसी-किसी गाँव को शुद्ध शूद्र गाँव बना देता था और किसीमे केवल ब्राह्मणों को बसाकर उनसे खेती कराता था। इस सम्बन्ध मे हम एक लम्बा अवतरण दे आये है। इस पर साधारणतया यह अनुमान किया जाता है कि शूद्रों को धीरे-धीरे ऊपर उठाकर वैश्य बनाने और ब्राह्मणों को धीरे-धीरे नीचे उतारकर खेतिहर बनाने मे राजा का भी हाथ था। आज जो भारी सख्या मे ब्राह्मण, क्षत्रिय, और शूद्र भी खेती मे लगे हुए है, उनका जहाँ प्रधान कारण भारतवर्ष मे एकमात्र खेती के व्यवसाय का प्रधान होना है, वहाँ एक गौण कारण यह भी है कि समय-समय पर राजा वैश्य के सिवाय और वर्णों को भी खेती के काम मे लगा देने मे सहायक होता था।

मजूरों और गुलामों की दशा भी बडी अच्छी थी। अर्थशास्त्र मे यह नियम दिया गया है कि जिस मजूर से कोई मजूरी पहले से तय न की जाय उसे "मजूरी काम तथा समय के अनुसार दी जाय। खेतीहरों मे हरवाहे, गउओं का काम करनेवालों मे ग्वाले और अपना माल खरीदनेवाले बनियों मे दूकान पर बैठनेवालों में मेहनताना तय न होने पर आमदनी का दसवाँ भाग ग्रहण करें।" मजूरी के नियम ऐसे सुन्दर और नीतियुक्त बनाये गये थे कि काम करनेवाला और करानेवाला दोनों मे से किसीका हक नहीं मारा जाता था। दासों

के नियम भी बड़े अच्छे थे। इनमे मनुष्यता की रक्षा थी। लिखा है–[1]

"उदर दास को छोडकर, आर्य जाति के नाबालिग शूद्र को वेंचनेवाले सम्बन्धी को १२ पण, वैश्य, क्षत्रिय तथा ब्राह्मण को वेंचनेवाले स्वकुटुम्बी को क्रमश २४, ३६, ४८ पण दड दिया जाय। यदि यही काम करनेवाला कोई दूर का रिश्तेदार या दुश्मन हो तो उसको क्रेता तथा श्रोता को पूर्व, मध्यम तथा उत्तम साहस दड के साथ-साथ मृत्यु दड तक दिया जा सकता है। म्लेच्छ लोग प्रजा वेंच सकते हैं तथा गिरो रख सकते हैं। आर्य्य लोग दास नहीं बनाये जा सकते हैं। पारिवारिक, राज्य दड तथा उत्पत्ति के साधन विषयक विपत्ति के आपडने पर किसी भी आर्य्य जाति के व्यक्ति को गिरो रखा जा सकता है। निष्क्रय का धन मिलते ही सहायता देने में समर्थ बालक को शीघ्र ही छुडा लिया जाय। एक बार जिसने अपने आपको गिरो रखा है या जिसको सम्बन्धियो ने दो बार गिरो रखा है, राज्यापराध करने पर या शत्रु के देश में भागनें पर वह आजीवन दास बनाया जा सकता है। धन को चुरानेवाले तथा किसी आर्य को दास बनानेवाले व्यक्तियो को आधा दड दिया जाय। राज्यापराधी, मृतप्राय तथा बीमार को भूल से गिरो रखनेवाला अपना धन लौटा ले सकता है। जो कोई गिरो में रक्खे व्यक्ति से मुर्दा या पाखाना पेशाब उठवाये, या उसको जूठा खिलाये, या कपडा पहनने को न देकर नगा रक्खे, या पीटे या तकलीफ दे या स्त्री का सतीत्व हरण करे उसका (गिरो रखने के बदले दिया गया) धन जब्त कर लिया जाय। दायी, दासी, अर्धसीरी तथा नौकरानी सदा के लिए स्वतत्र कर दी जाय और उच्चकुल के मनुष्य को उसके घर से भाग जानें दिया जाय।"

१ कौटिल्य अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० १६८ से १७१ तक

मजूरों के भी सघ थे। और देश मे पूँजीवाले लोग भी जरूर थे। खेतिहर और बनिये मिलकर अपने व्यापार सघ बनाते थे और मजूर लोग मिलकर अपने-अपने मजूर-सघ स्थापित किये हुए थे। जहाँ दोनों के सम्बन्ध के नियम दिये गये है वहाँ मजूरों की पंचायत (सघ भृताह) के लिए भी नियम है। इन सब बातो से पता लगता है कि उस समय मिलजुलकर संघ शक्ति से काम लेने की चाल बहुत काल से दृढ हो चुकी थी।

सिक्कों का चलन भी उस समय बहुत निश्चित था। सोने और चाँदी दोनों के सिक्के चलते थे। ताँबे के सिक्के भी थे। रुपया पण कहलाता था। अठन्नी, चौअनन्नी, दुअन्नी भी चलती थी। ताँबे के अधन्ने, पैसे, धेले आदि भी चलते थे, जिन्हे मापक, अर्द्धमाषक, काकिणी और अर्द्धकाकिणी कहते थे।[1] इन सिक्कों के सिवाय व्यापारी लोग एक दूसरे पर हुँडी भी चलाते थे। और इसमे तो तनिक भी सदेह नही है कि गाँव मे अदला-बदली का नियम पहले की तरह जारी था। गाँव के लोग इतने सुखी थे कि चौपालों मे और पचायतों के दालानों मे अक्सर नाटक हुआ करते थे। नाचने और गानेवाले आकर गाववालों का मनोरंजन किया करते थे। अर्थशास्त्र कार ने इस बात को बहुत बुरा बतलाया है क्योंकि इससे गाँववालों के घरेलू और खेत के काम धधों मे बडा हर्ज पडता था।

प्रोफेसर संतोषकुमार दास लिखते है कि इस काल मे गाँव के रहनेवालों को आजकल के हिसाब से अमीर तो नहीं कहा जा

१ डाक्टर शमशास्त्री की राय मे (अंग्रेजी अर्थशास्त्र पृ० ९८) 'रूप्य रूप' और कर्शपण एक ही चीज है। यहाँ पर रुपये के लिए पण शब्द का प्रयोग हुआ है।

सकता, परन्तु इसमे सदेह नहीं कि उनकी जितनी सीधी सादी जरूरते थीं, सब सहज मे पूरी होती थीं। मेगेस्थनीज लिखता है कि लोग बहुत सीधी चाल-ढाल के थे। स्वभाव से सयमी थे। और गहने-पाते काम मे तो जरूर लाते थे परन्तु उनका पहिरावा बहुत सादा था। एक सूती धोती, कधे पर चद्दर, सफ़ेद चमड़े के जूते एक भले भानस के काफ़ी सामान थे। निर्धन और दरिद्र भी होते थे, परन्तु उनकी गिनती अत्यत कम थी। और वे थोड़े से निर्धन भी सरकारी आश्रय मे रहते थे। अर्थशास्त्र के अनुसार "राजा का कर्तव्य था कि बूढ़े, अपाहिज, पीडित और लाचार का पालन करे। और निर्धन, गर्भवती और उनके बच्चों के पालन पोषण का उचित प्रबध करे।[1]"

दैवी विपत्तियों के उपायवाले प्रकरण मे अग, पानी, दुर्भिक्ष, चूहा, शेर, साँप तथा राक्षस इन आधिदैवी जोखिमों से जनपद को बचाने के उपाय बताये है। पानी, व्याधि, दुर्भिक्ष और चूहों से रक्षा के सम्बंध मे जो-जो उपाय बताये है उन्हे हम यहाँ अदूधृत करते है—

पानी—नदी के किनारे के गाँववाले वर्षा की रातो में किनारे से दूर रहकर सोवे। लकडी और बाँस की नावे सदा अपने पास रक्खें। तूँबा, मषक, नाव, तमेड तथा बेडे के द्वारा डूबते हुए लोगो को बचावे। जो लोग डूबते हुए मनुष्य को बचाने के लिए न दौडें उनपर १२ पण जुर्माना किया जाय बशर्तेकि उनके पास नाव आदि तैरने का साधन न हो। पर्वों में नदी की पूजा की जाय। माया वेद तथा योग-विद्या को जाननेवाले वृष्टि के विरुद्ध उपाय करें। वृष्टि के रुकने पर इन्द्र, गगा पर्वत तथा महाकच्छ की पूजा की जाय।

१ अर्थशास्त्र (प्रा० वि०) पृ० ३९ से ४१ तक।

व्याधि—चौदहवे अधिकरण (औपनिषदिक) में विधान किये गये तरीको के द्वारा बीमारी के भय को कम किया जाय। यही बात वैद्य लोग दवाइयो से और सिद्ध तथा तपस्वी लोग शातिमय साधन तथा प्रायश्चित्तो के द्वारा करे। फैलनेवाली बीमारी (मरक) के सम्बध में भी यही तरीके काम में लाये जायँ। तीर्थों में नहाना, महा-कच्छ का बढाना, गौओ का स्मशान में दुहना, मुर्दे का धड़ जलाना तथा देवताओ के उपलक्ष में रात भर जागना आदि काम किये जायँ। पशुओ की बीमारी के फैलने पर परिवार के देवताओ की पूजा तथा पशुओ के ऊपर से धूप बत्ती उतारी जाय।

दुर्भिक्ष—दुर्भिक्ष के समय में राजा अनाज तथा बीज कम कीमत पर बाँटे। लोगो को इधर-उधर देश में भेजदे। नये-नये कठिन कामो को शुरू करे और लोगो को भोजनाच्छादन दे। मित्र-राष्ट्रो का सहारा लेकर अमीरो पर टैक्स बढावे तथा उनका इकट्ठा किया हुआ धन निकाल ले। जिस देश में फसल अच्छी हो उसमें अपनी प्रजा को लेकर चला जावे। नदी के किनारे धान, शाक, मूल तथा फलो की खेती करावे। मृग, पशु, पक्षी, शिकारी जन्तु तथा मच्छियो का शिकार शुरू करे।

चूहा—चूहो के उत्पात होने पर बिल्ली तथा नेवलो को छोडे। जो लोग पकडकर चूहो को मारे उनपर, १२ पण जुर्माना किया जाय। जो लोग जगली जानवरो के न होते हुए भी बिना कारण ही कुत्तो को छोड रखें उनपर भी पूर्ववत् दड का विधान किया जाय। थूहड के दूध में धान को सानकर खेत में छोडे। ऐन्द्रजालिक तरीको को काम में लावे तथा चूहो के सम्बन्ध में राज्यकर लगावे। सिद्ध तथा तपस्वी लोग शातिमय उपायो को करे। पर्वों में मूषक-पूजा की जाय।

टिड्डीदल पक्षी, कीडे आदि के उत्पातो का उपाय भी इसी प्रकार किया जाय ।”

परन्तु उसी समय के लेखक मेगेस्थनीज का कहना है कि भारतवर्ष मे अकाल पड़ने की बात कही सुनी भी नहीं जाती। इससे प्रकट है कि चंद्रगुप्त के राज का वंदोवस्त ऐसा अच्छा था कि उस समय भारतवर्ष मे लोग अकाल की पीडा नहीं जानते थे। इस सम्बन्ध मे चाणक्य का प्रवन्ध बडाई के योग्य था।

: ५ :

प्राचीन काल का अन्त

१. चाणक्य के बाद के पाँचसौ वर्ष

अब तक गाँव के बारे मे जो कुछ लिखा गया है वह अधिकतर उत्तर भारत के सम्बन्ध मे है। चाणक्य के काल के अन्त मे दक्षिण भारत के आँध्रों और कुशानों का समय आता है जो विक्रम से डेढ-सौ वर्ष पहले आरम्भ होता है और साढ़े तीनसौ वर्ष पीछे खतम होता है। कुशानों का राज उत्तर मे था और आन्ध्रों का दक्षिण मे था। जो सिलसिला मौर्य्यकाल तक खेती और व्यापार की उन्नति का चला आया था उसके टूट जाने का अभी तक कोई कारण नहीं हुआ था। भारत की बहुत भारी आबादी पहले की तरह गाँवों मे रहती थी। गाँव घोषों और पल्लियों मे विभक्त थे। गाँव का मुखिया आँध्रों के राज्य मे सरकारी तौर से रखा जाता था वह झगडों का निबटारा भी करता था और राजा के लिए कर भी उगाहता था। अधिकारी लोग जो मालगुजारी मुकर्रर कर देते थे वह रकम जब-तक राजा को मिलती जाती थी तबतक गाँव की बातों मे राजा दखल नहीं देता था। धर्मशास्त्र भी यही कहता है कि गाँव सभी तरह से स्वतन्त्र है।[१] और महाभारत मे कुल की रीति[२] भी प्रमाण

१, पारस्कर गृह्यसूत्र १-८१३

२ महाभारत, आदि पर्व ११३-९

मानी गई है। उस समय भी एक ही परिवार मे बंधे रहने की रीति सबसे अच्छी समझी जाती थी। और अलग होकर रहना निर्बलता का चिन्ह था। इस काल मे राजा अपनेको पृथ्वी का ऐसा स्वामी समझता था कि जब उसे ज़रूरत होती थी प्रजा की राय लिये बिना ही भूमि ले लेता था या किसीको दे देता था। तो भी किसान के जीवन की दो बातें उलट-पुलट करने की उसे मनाही थी, (१) उसका घर और (२) उसका खेत।

किसान या वैश्य काम खेती के सिवाय पशुपालन भी करता था। दान देना, पढना, लिखना, व्यापार करना और लेन-देन करना भी उसका कर्तव्य था। उसे बीज बोना भी आना चाहिए था और अच्छे और बुरे खेतों की परख भी होनी चाहिए थी।[1] उस समय ज़रूरत पडने पर किसान या वैश्य को सरकार से बोने को बीज भी मिलते थे और बदले मे उपज का चौथाई हिस्सा सरकार लेती थी। सिचाई के लिए जल का प्रबन्ध भी सरकारी था और ज़रूरत पर तकावी बँटती थी।[2]

बुनाई का काम इस काल मे अपनी पराकाष्ठा को पहुच चुका था। सूत, अन्न और रेशम के उत्तम से उत्तम कपड़े बनते थे। ऊन के कपडों मे एक तरह का कपडा चूहों की ऊन से बनाया जाता था जो विशेष रूप से गर्म रहता था। चीनी रेशम के सिवाय तीस प्रकार के

१ "पशूना रक्षण दानमिज्याध्ययनमेव च।
वणिक्पथ कुसीदच्च वैश्यस्य कृषिमेव च मनु १। ९०
बीजानामुप्तिविच्च स्यात्क्षेत्र दोषगुणस्य च।
मानयोग च जानीयात्तुलायोगाश्च सर्वश मनु ९। ३३०

२ महाभारत, शांति पर्व, अ० ८८ श्लो० २६-३०, अ० ८१ श्लोक २३-२४, सभा पर्व अ० ५ श्लो० ६६-७९।

देसी रेशम वरते जाते थे। द्राविड कवियों ने कुछ कपडों की उपमा "दूध की वाष्प और साप के केचुल" तक से दी है और वारीकी का वर्णन करते हुए यह स्पष्ट लिखा है कि इनकी वुनावट इतनी वारीक है कि आखों को सूत के धागे अलग अलग दिखाई नहीं पडते।

इस काल मे भी पेशों और कलाओं के सघ या पञ्चायते वनी हुई थीं। प्राचीन लिपियों से जुलाहों, कुम्हारों, तेलियों ठठेरों, उदयात्रिकों, चित्रकारों और मूर्तिकारों की पञ्चायते अलग-अलग वनी हुई थीं। जो विद्वान् महाभारत की रचना का काल इसी काल के भीतर समझते हैं वे इस अवसर पर महाभारत का भी प्रमाण देकर कहते हैं कि इस समय पञ्चायतों का वडा भारी महत्त्व था। महाभारत मे लिखा है कि इन पञ्चायतो से राज की शक्ति को प्रधान रूप से सहारा मिलता था।[1] सरपञ्चो मे फूट डालना या वग़ावत के लिए उभारना, वैरी की हानि करने की मानी हुई रीति थी।[2] जव गन्धर्वों से दुर्योधन हार जाता है तव अपनी राजधानी को लौटना नहीं चाहता। कहता है कि मैं पञ्चायत के मुखियों को कैसे मुंह दिखाऊँगा[3]। उस समय पञ्चायत की रीतियाँ और नीतियाँ धर्मशास्त्र की तरह मानी जाती थीं।[4] अपनी पञ्चायत के

१ आश्रमवासिक पर्व, ७। ७-९

२ शाँति पर्व ५९। ४९, १९१। ६४

३ ब्राह्मणा श्रेणिमुख्याश्च तथोदासीन वृत्तय।
कि माँ वक्ष्यति किम् चापि प्रतिवक्ष्यामि नानहम्।

वनपर्व २४८। १६

४ जानिजानपदान्धर्माञ्श्रेणी धर्माश्च धर्मवित
समीक्ष्य कुलधर्मांश्च स्वधर्म प्रतिपादयेत्॥ मनु ८। ४१

सामने वचन देकर जो तोड़ता था उसे राजा देश निकाले का दण्ड देता था। और पचायत के विरुद्ध पाप करनेवाले के लिए कोई प्रायश्चित्त न था। ऐसे कड़े नियमों के होते कला और कारीगरों मे ऊँची से ऊँची दशा को पहुँचना ज़रूरी था। इन्हीं पेशेवालों की धीरे-धीरे जातियाँ वन गईं और उस समय की पञ्चायतें आज भी जातियों की पञ्चायतें वनी हुई है। मनुस्मृति मे लिखा है कि राजा को चाहिए कि वैश्यों और शूद्रों से उनके कर्तव्यों का पालन करावे। अगर ये दोनों जातियाँ अपने-अपने कर्तव्यों का पालन करेगी तो संसार की व्यवस्था ही नष्ट हो जायगी।[1] उस समय वर्ण धर्म की रक्षा वड़े महत्व की वात समझी जाती थी। नासिक की गुफा के शिला-लेख मे राजा गौतमीपुत्र बालश्री वड़े गर्व के साथ कहता है कि हम ने चारों वर्ण के एक-दूसरे मे मिलकर गडवड करने मे रुकावट डाली है। इस प्रथा को बन्द कर दिया है।

इस काल मे दासों के पास कोई सम्पत्ति न होती थी। वह मजूरी के रूप मे ही कर देता था। शूद्रों का यही कर्तव्य था कि वे विशेप रूप से किसानों की सेवा करे।[2] बाकी दशा दासों की वही थी जो पिछले अध्याय मे लिख आये है। एक वात इस काल की वड़े मार्के की है कि किसान लोग शूद्रों से अर्थात् मजूरों से लगभग मिलते जारहे थे। मजूर वढते-बढते चरवाहे से गोपालक वन जाता था। वनिये की नौकरी करते-करते आप वनिज करने लग जाता था। वहुत दिनों का किसान का मजूर इनाम मे या मजूरी मे माफी खेत

१ वैश्यशूद्रौ प्रयत्नेन स्वानि कर्माणि कारयेत्।
तौ हि च्युतौ स्वकर्मभ्य क्षोभयेतामिद जगत्। मनु ८। ४१८

२ महाभारत १२। ६०। ३७, १। १००। १

पाजाता था। इस तरह मजूरी की जाति का आदमी वनिया, ग्वाला या खेतिहर हो जाता था। महाभारत मे लिखा है कि छः गायों को चरानेवाला एक गाय का सारा दूध पाने का अधिकारी है और सौ गायें चराता हो तो नित्य के दूध के सिवाय वरस के अन्त मे एक जोडी गाय बैल की मिलती थी। किसान के मजूर को मजूरी मे उपज का सातवाँ भाग मिलता था। इस तरह मजूर जाति के लोग भी किसान वनते गये। ब्राह्मण और क्षत्रिय वैश्य तक उतर सकते थे। परन्तु शूद्र नहीं हो सकते थे। इस तरह तीनों वर्णों के लोग धीरे-धीरे किसान होते गये और किसानों की गिनती वढती गई।[1]

मनुस्मृति मे राजा को अनाज के ऊपर छठा भाग, पेड़, माँस, मधु, घी, कन्दमूल औषधि, मसाले, फल और फूल पर भी छठा भाग, पशु पर पाँचवाँ भाग कर राजा को मिलता था।[2] महाभारत मे साफ लिखा है कि कर जरूर लगाये जाने चाहिएँ। इसका कारण यह है

१ महाभारत १२। ६०। २४, २। ५। ५४, २। ६१। २०

२ पञ्चाशद्भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययो ।
धान्यानामष्टमो भाग षष्ठो द्वादश एव वा ॥ ७। १३०
आददीताथ षड्भाग द्रुमासमधुसर्पिषाम् ।
गन्धौषधिरसाना च पुष्पमूलफलस्य च। ७। १३१
पत्रशाकतृणाना च चर्मणा वैदलस्य च।
मृण्मयाना च भाण्डाना सर्वस्याश्ममयस्य च ॥ ७। १३२
आददीताथ षड्भाग प्रणष्टाधिगतान्नृप ।
दशम द्वादश वापि सता धर्ममनुस्मरन् ८।३३
धान्येऽष्टम विशाँ शुल्क विश कार्षापणावरम् ।
कर्मोपकरणा शूद्रा कारव शिल्पिनस्तथा मनु १०। १२०

कि प्रजा की रक्षा की जाती है और रक्षा मे खर्च लगता है। परन्तु कर बहुत हलका लगना चाहिए। सभी किसानों से और गाँव के सभी लोगों से कर रुपये पैसे के रूप मे नहीं लिया जाता था। किसान अनाज के रूप मे देता था, व्यापारी अपने व्यापार की वस्तु के रूप मे देता था और मजूर और कारीगर अपने काम के रूप मे देते थे। केवल शहर के लोग रुपये पैसे के रूप मे देते थे। जो चीजे जीवन के लिए अत्यन्त जरूरी थीं उनपर कर नहीं लगता था।

धन पैदा करने के सात साधन बताये गये है। उनमे साहूकारी भी है, परिश्रम भी है और बनिज भी है। साहूकारी और बनिज तो धन के साधन है ही, परन्तु परिश्रम जो अलग साधन दिखाया गया है उसमे खेती-बारी और कारीगरी मुख्य है।[१] सीधी-सादी मजूरी से तो आज कोई धनी नहीं हो सकता। परन्तु मनुस्मृति मे केवल परिश्रम का उल्लेख करने से हम यह कह सकते है कि शायद उस समय मजूरी बहुत अच्छी मिलती थी और चीजें सस्ती थीं इसलिए मजूर भी धनवान हो सकता था।

सूद, कर, व्यापार और मजूरी इन सबके सम्बन्ध मे विस्तार से जो नियम दिये गये है उनसे यह पता चलता है कि भारत मे इस काल मे आर्थिक सगठन जितना उत्तम था उससे अधिक अच्छा हो नहीं सकता। पेशेवर और कारीगर बड़े चतुर और दक्ष देख पडते है। उस समय का जीवन बडा सभ्य और ऊँचा देख पड़ता है। भाति-भाति के अनाज, मसाले, फल-फूल तरकारियाँ जो काम आती थीं, ऊँचे दर्जे की खेती की गवाही देती है। भारत का उस समय का

१ सप्न वित्तागमा धर्म्या दायो लाभ क्रयो जय ।
प्रयोग कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एव च ॥ मनु १०।११५

जगद्व्यापी व्यापार वाणिज्य की उत्तम अवस्था वताता है। उस समय की अद्भुत और अपूर्व कारीगरी और कला बहुत ऊँची उन्नति की साक्षी है। सभी घरों मे सोना, चादी, रत्न, गहने और रेशमी कपडों के होने की चर्चा है।[१]

२. गुप्तकाल

इसके बाद गुप्तों का समय आता है। गुप्तों के समय मे भारतवर्ष के वाहर भी भारतीय लोग जाकर बसे। बंगाल से पूरव वर्मा मे जाकर भारतीयों ने वस्तियाँ वसाई और खेतीवारी करने लगे। इससे पहले के काल मे भी पता चलता है कि भारत के दक्षिण के हिन्द महासागर मे पच्छिम से पूरव तक फैले हुए अनेक टापुओं मे वड़े-वड़े जहाजों पर भारत के व्यापारी आया-जाया करते थे और बहुत से लोग जाकर वही वस भी गये थे और अपनी सस्कृति का प्रचार भी वहाँ कर रक्खा था। परन्तु जहाँ-जहाँ भारतीय गये और वसे, वहाँ उनका मुख्य कारवार खेती का ही था। और अपनी मातृभूमि मे तो सतजुग से गाँव मे रहना और खेती-बारी करना उनकी विशेषता थी। युग और राज के वदलने से कभी तो राजा का अधिकार कम हो जाता था और कभी बढ जाता था। गाँव मे उपज के वढ जाने से उसे दूर-दूर पहुँचाने के लिए व्यापार का सिलसिला बढाया गया था और धीरे-धीरे व्यापारियों के केन्द्र वनते

१ "तैजसाना मणीना च सर्वस्याश्ममयस्य च।
भस्मनाद्भिर्मृदा चैव शुद्धिरुक्ता मनीषिभि ॥ मनु ५।१११
निर्लेप काञ्चन भाण्डमद्भिरेव विशुध्यति।
अब्जमश्ममय चैव राजतचानुपस्कृतम् ॥ मनु ५।११२

गये। यही केन्द्र नगर थे और इन्ही नगरो मे प्रजा की और प्रजा की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए राजधानियाँ बन गई थीं। ये शहर धीरे-धीरे बहुत बढ गये और बलवान राजाओं ने छोटे-छोटे राजाओं को अपने बस मे करके अपने अधिकार दूर-दूर तक फैला लिये। इस तरह के राजाओं मे मौर्य्यकाल के राजा बढ़े-चढ़े थे। गुप्तकाल के राजा उनसे भी ज्यादा बढ-चढ़े निकले। पर उन्होंने एक बडा महत्व का काम भी किया। बाहरी विदेशी जातियों ने भारत पर हमले किये थे और भारत पर अधिकार कर लिया था। अनेक लडाइयाँ हुई। गुप्तों ने उन्हे परास्त किया और भारत को भारतीयों के हाथ मे रक्खा। गुप्तों के समय मे व्यापार बहुत बढ गया और शहरों को बडा लाभ हुआ तो भी भारत की बहुत भारी आबादी गाँवों मे ही रहती थी और खेती-बारी ही उनका खास धन्धा था। वे लोग कुओं से, नहरों से, तालाबों से और गढ्ढों से पानी लेकर सिचाई करते थे। उस समय जल सचय के लिए 'निपान' अर्थात् भारी-भारी जलाशय हुआ करते थे। यह नियम था कि प्रजा जब कोई नया धन्धा उठावे या नई जमीन जोते, बोवे या नहर, तालाब, कुएँ खोदे और यह सब कुछ अपने काम के लिए करे तो जबतक खर्च का दूना लाभ न होने लगे तबतक राजा उनसे कुछ न माँगे। राजा इस तरह किसान से कर वसूल करे कि किसान नष्ट न होने पावे। जैसे माली फूल चुन लेता है परन्तु पेड की पूरी रक्षा करता है उसी तरह राजा भी बरते। राजा उस कोयलेवाले की तरह न बरते जो कोयला लेने के लिए पेड को जला डालता है।[1]

[1] शुक्रनीतिसार ४।४।८१–११२, १२४–१२७, ४।५।१४१ और २४२–४, २२२–२३,

जगल से उदुम्बर, अश्वत्थ, इमली, चदन, वट, कदम्ब, अशोक, वकुल, आम, पुन्नाग, चम्पक, सरल, अनार, नीम, ताल, तमाल, लिकुच, नारियल, केला आदि के फल मिलते थे। खदिर, सागवान, साल, अर्जुन, शमी आदि वड़े-वड़े पेड़ों की भी चर्चा है। रमनों और जगलों के अध्यक्ष भी हुआ करते थे जिन्हे फल-फूल के जमने और विकसने का पूरा हाल मालूम होता था। वे पेडों का लगाना और पौधों का पालन पोपण करना खूब जानते थे और औपधियों का अच्छा ज्ञान रखते थे।[1]

कलाओं का भी अच्छा विकास हुआ था। शुक्राचार्य्य ने तो चौसठ कलाओं का वर्णन किया है परन्तु इसका यह मतलब नहीं है कि शुक्रनीतिकार के समय मे ही ये चौंसठों कलायें चली थीं। उन्होंने केवल सूची तैयार की थी जिससे यह पता लगता है कि वहुत से ऐसे काम भी उस समय होते थे जिन्हे लोग आजकल विलकुल नई वात समझते हैं। अर्क खींचना, औपधियाँ तैयार करना, धातुओं का विश्लेषण, धातुओं का मिश्रण, नमक का धन्धा, पानी को पम्प करना, चमड़े को सिझाना इत्यादि काम आज से कम से कम डेढ हजार वरस से पहले हुआ करते थे। हम इस जगह कताई वुनाई की तो चर्चा ही नहीं करते, जो न केवल देशव्यापक काम था वल्कि जिसमे सारे संसार मे भारतवर्ष की विशेपता थी। शुक्राचार्य ने ऊन और रेशम के कपडों का केवल जिक्र ही नहीं किया है वल्कि इनके धोने और साफ करने की विधियाँ भी वताई हैं और याज्ञवल्क्य ने तो रुई से बने हुए कागज की भी चर्चा की है।[2]

१ शुक्रनीतिसार ४ । ५ । ९५–१०२, ११५–१२२, २ । ३२०–३२४

२ शुक्रनीतिसार ४ । ३ १ । १८०

जो गाँव समुद्र के किनारे थे उन गाँवों मे अधिकांश मरजीवे रहते थे और समुद्र से मोती, मूँगे, सीप आदि निकालने का काम वहुत जोरों से होता था। सीपों के सिवाय मछलियों, सीपों, शंखों और वाँसों से भी मोती मिलते थे। सवसे अधिक सीपों से मिलते थे।[1] लङ्का के रहनेवाले नकली मोती भी वनाया करते थे। उन दिनों साधारण लोग इतने सुखी थे कि सोना, चाँदी और रत्नों के गहने पहनने का आम रिवाज था। इससे यह भी पता चलता है कि उस समय गाँव-गाँव मे वड़े होशियार सुनार होंगे।[2]

वंसफोर वाँस की चीजों के वनाने मे ऐसे कुशल थे कि उत्सव के अवसरों पर शुद्ध वाँस के वने हुए चार पहियों के रथ तैयार करते थे जिनमे तीन-तीन गुम्वद होते थे और चौदह-पन्द्रह हाथ तक ऊंचे होते थे। इन रथों को वे वड़ी सुन्दरता से वनाते, रंगते और सजाते थे। इन पर वडी अच्छी चित्रकारी भी करते थे।[3]

उस समय भी पंचायते वनी हुई थीं। किसानों की, कारीगरों की, कलावन्तों की, साहूकारों की, नटों की और सन्यासियों तक की पंचायते संगठित थीं।[4] इन पंचायतों के नियम वंधे हुए थे और वह सरकारी कानून के अन्तर्गत समझे जाते थे, और उनके अधिकार और उनके नियम उस समय की सरकार भी मानती थी। जो लोग पंचायत के सदस्यों मे फूट डालने के अपराधी होते थे उन्हे

१ शुक्रनीतिसार ४। २। ११७-११८

२ मृच्छकटिक नाटक और गरुड पुराण मे अनेक अशो से इन वातो का प्रमाण मिलता है।

३ वील, फाहियान—(अग्रेजी) पृष्ठ ५६, ५८

४ शुक्रनीतिसार ४।५।३५—३६

सरकार की ओर से वडा कडा दड मिलता था। "क्योंकि यदि ऐसों को दंड न दिया गया तो यह फूट की बीमारी महामारी की तरह महा भयानक रीति से फैल जायगी।"[1] याज्ञवल्क्य सहिता मे लिखा है कि जो कोई पंचायत की चोरी करे या वचन तोड़े तो उसे देश निकाला दिया जाय और उसकी सारी जायदाद जब्त करली जाय।[2] पचायतों के पास पंचायती जायदाद हुआ करती थी, और पचायत के संगठन के नियम विस्तार से वने हुए थे। परन्तु नियमों के बनाने मे यह बात बरावर ध्यान मे रक्खी जाती थी कि उस समय के कानून से और धर्मशास्त्र के नियमों से किसी तरह विरोध न पड़े। पंचायतों की नियमावली का नाम 'समय' था और पंचायत के काम करनेवाले 'कार्य्य चिन्तक' कहलाते थे पंचायत मे जो लोग ईमानदार और पवित्र आचरण के समझे जाते थे। वही कार्य चितक वनाये जाते थे। और वही पचायत के नाम से सरकारी दरवारों मे भी काम करते थे। सरकार मे उनकी बडी इज्जत की जाती थी। पंचायत के सदस्यों पर भी उनका अधिकार था। उनके फैसले जो न माने उन्हे वे दंड दे सकने थे। परन्तु वे भी पंचायत के नियमों से इतने बधे होते थे कि जब वे आप चूक जाते थे या उनमे और सदस्यों मे जब झगडा पड जाता था तब राजा ठीक निर्णय करता था।[3] परन्तु पंचायत को पूरा अधिकार था कि यदि कार्य-

१ नारदस्मृति १०।६

२ याजवल्क्य सहिता २।१८७—

३ नारद स्मृति १०।१, म म मित्रमिश्र विरचित वीरमित्रोदय (जीवानन्द विद्यासागर सम्पादित) पृ० ४२८

याज्ञवल्क्य ने तो मुखिया को भी दड दिलाया है—

चिन्नकों से कोई भारी अपराध हो जाय या वे फूट डालनेवाले ठहर जायं या वे पंचायत का धन नष्ट करे तो उन्हे निकाल बाहर करे और राजा को केवल इस बात की सूचना दे दे। और अगर कोई कार्य चिन्तक इतना प्रभाववाला निकले कि पंचायत उसे निकाल न सके तो मामला राजा तक आता था और राजा दोनों पक्षों की बाते सुनकर निश्चय करता और उचित दण्ड देता था।

पंचायत के होने और उसकी रीति पर काम होने का एक पुराना उदाहरण इन्दौर मे मिले हुए स्कंदगुप्त के एक ताम्रपत्र से मिलता है।[1] इस लिपि मे एक जायदाद के दान किये जाने की बात है कि उसके ब्याज से सूर्य देवता की पूजा के लिए मन्दिर मे नित्य एक प्रदीप जला करे। सूर्य देवता के मन्दिर मे इस काम के लिए एक ब्राह्मण जो जायदाद दान मे लिख देता है, उस जायदाद पर तेलियों की उस पञ्चायत का कब्जा सदा के लिए कर दिया जिसका सरपंच इन्द्र-पुर का रहनेवाला जीवन्त है, और इस जायदाद पर उस पञ्चायत का कब्जा उस समय तक रहेगा जब तक कि, इस बस्ती से चले जाने पर भी, उसमे पूरा एका बना रहे।

और समयों की तरह इस समय भी यही बात प्रचलित थी

साहसी भेदकारी च गणद्रव्यविनाशक ।
अच्छेद्य सर्व एवैते विख्याप्यैव नृपे भृगु ॥
गण द्रव्य हरेद्यस्तु सविद लघयेच्च य ।
सर्वस्वहरण कृत्वा त राष्ट्राद्विप्रवासयेत् ॥

याजवल्क्य स्मृति ॥ २।१८७

१ फ्लीट (अंग्रेजी में) गुप्त लिपियाँ न० १६ (सवत् ५२१ विक्रमीय)

कि बेटा प्रायः अपने बाप का पेशा करता था। इसीसे पेशेवरो की भी जाति बन गई थी। जो अपने बाप दादों का पेशा छोड देता था उसे राजा दण्ड भी दे सकता था। परन्तु यह अकारण छोड देने वाले की बात थी। बाप दादों के पेशे को छोड देने के लिए प्रबल कारण होने पर पेशा छोडने मे हर्ज भी नहीं समझा जाता था। मंदसोर के शिलालेख मे, जो कुमारगुप्त और बन्धुबर्म्मन का लिखा है,[१] यह उल्लेख है कि रेशम बुननेवालों की एक पचायत पहले लाट पर ठहरी थी, फिर दशपुर मे वहाँ के राजा के गुणों पर मुग्ध होकर चली गई। वहाँ जाकर कुछ लोगों ने धनुर्विद्या सीखी, कुछ धार्मिक जीवन विताने लगे, कुछ ज्योतिषी हो गये, कुछ कवि होगये, कुछ सन्यासी हो गये और बाकी बाप दादों की तरह रेशम बुनते रहे। इस पंचायत ने सवत् ४९२ (विक्रमी सम्वत) मे दशपुर, मे सूर्य का एक बहुत सुन्दर बडा मन्दिर बनाया। और छत्तीस बरस बाद जब वह मरम्मत के योग्य हुआ तब उसी पंचायत ने सम्वत् ५२८ वि० मे उसकी पूरी मरम्मत कराई। इस उदाहरण से दो बाते सिद्ध होती है। एक तो यह कि पचायत मे बधकर भी लोगों को इतनी आजादी थी कि वे अपने मनमाने काम कर सकते थे, अपनी योग्यता बढा सकते थे और अपना पारिवारिक पेशा छोड सकते थे। दूसरी बात यह मालूम होती है कि जातियों या पेशों की पंचायतों का संगठन बराबर पीढी दर पीढी चलता रहता था और काम करता रहता था। मजूरों का भी ऐसा ही सगठन था और दासो और मजूरों की दशा भी वैसी ही थी जैसी पहले वर्णन की गई है। किसानों की सुख समृद्धि गुप्त काल मे भी घटी नहीं थी।

१ फ्लीट (अंग्रेजी मे) गुप्त लिपियां न० १८

पूर्व माध्यमिक काल

१. हर्षकाल और पीछे

गुप्तकाल के बाद ही हर्ष का समय आता है। गुप्त सम्राटों का बड़ा भारी साम्राज्य मध्य एशिया के जंगली लुटेरों की चढ़ाई से तहस-नहस हो गया। जिस तरह गुप्त साम्राज्य बरबाद हुआ उसी तरह भारतवर्ष के भारी व्यापार को भी धक्का पहुँचा। परन्तु गाँव और गाँव के खेती आदि व्यापार इन धक्कों से भी नष्ट नहीं होते थे। यही सारी मुसीबतों मे बेड़ा पार लगाते थे। हर्ष के समय मे भी खेती-बारी के सम्बन्ध के सारे काम बराबर ज्यों के त्यों होते रहे। इस समय पच्छाँह के देशों मे क्या किसानी के काम मे, और क्या व्यापार मे, और क्या सामुद्रिक यात्राओं मे जाटों का बोलबाला रहा। भारतवर्ष मे, जैसे सदा से होता आया, जन समुदाय गाँवों मे ही रहता था और सबसे बड़ा कारबार खेती का था। गाँव-गाँव खण्डसाले चलती थीं, चरखे और करघे चलते थे, गाँव मे सभी जाति और पेशे के मनुष्य रहते थे, सब तरह की कारीगरी और कला पहले की तरह बराबर समुन्नत अवस्था मे थी। कश्मीर अपने चावलों और केशर के लिए प्रसिद्ध हो गया था। मगध भी अपने चावलों के लिए मशहूर था। ह्युएनत्साग ने लिखा है कि बहुत भारी अमीर लोग मगध के ही चावल खाते थे।[1] लिखा है कि मथुरा से १००

१ बील—ह्युएनत्साग, (अंग्रेजी) जिल्द २, पृ० ८२

मील पच्छिम पार्यात्र नाम के स्थान मे इस तरह का चावल होता था जो साठ दिनों मे ही पकता था (इसे साठी का चावल कहते हैं और वरसात मे अव भी साठ दिन मे ही पकता है) ह्यूग्नत्साग ने लिखा है कि लोगों का साधारण भोजन घी, दूध, मक्खन, मलाई, खाँड, मिश्री, रोटियाँ, तेल आदि था। और जो मास खाते थे वे हरिण का मास और ताजी मछलियाँ खाते थे। फलों मे, उसने लिखा है कि, इतने हैं कि नाम नहीं गिने जा सकते। आम्र, कपित्थ आमलकी, मधूक, भद्रआमला, टिंडक, उदुम्वर, मोचा, पंस्य, नारियल, खजूर, लुकाट, नासपाती, वेर अनन्नास, अगर इत्यादि-इत्यादि अनेक नाम गिनाये है। लिखा है कि कश्मीर फल-फूल के लिए मशहूर था।[1] शिक्षा के विषय मे लिखा है कि सात और सात वरस से अधिक के लडकों को पाँच विद्याये सिखाई जाती थीं जिनमे से दूसरी विद्या शिल्पस्थान विद्या थी, जिसमे कलाओं और यत्रों का वर्णन है। कपडों के वारे मे ह्युएनत्साग ने भारत के कारीगरों की वडी प्रशंसा की है। सूती, रेशमी, छालटी, कम्वल और कराल इन पाच प्रकार के वस्त्रों का वर्णन किया है। इनमे से कम्वल से अभिप्राय था वहुत वारीक ऊनी कपड़े से जो वकरी के वहुत वारीक रोये से वनते थे। कराल एक जंगली जानवर के वारीक रोये के वने कपड़े होते थे। ऐसे कपड़े अमीरों की फरमाइश पर ही वनते थे। वरोच या महाकच्छ की रुई सदा की तरह हर्ष के समय मे भी मशहूर थी, उसके वारीक कपड़े भी मशहूर थे। वुनाई की कला किस ऊँचे दर्जे को पहुँच चुकी थी इस वात का थोड़ा सा अन्दाजा वाण द्वारा वर्णित राज्यश्री के विवाह प्रकरण से हो सकता है। लिखा है कि "महल

१ वील—ह्युएनत्साग, (अग्रेजी) जिल्द २, पृ० २३२

क्षौम, बादर, दुकूल, लाला तन्तुज, अशुक और नैत्र से सुशोभित था जो साँप के केचुल की तरह चमकने थे और अकठोर केले के पेड के भीतर के छिलके की तरह कोमल थे और इतने हलके थे कि सांस से उड़ जासकने थे। छूने से ही उनका पता लगता था। चारों ओर हजारों इन्द्रधनुष की तरह चमक रहे थे।[१] क्षौम छाल के कपडों को कहते है बादर रुई के कपडों को कहते है, लाला तन्तुज उस कौशेय वस्त्र को कहते है जिसके तन्तु कीड़े की लाला या राल से बनते है। नैत्र किसी वृक्ष विशेप की जड के रेशों से बने वस्त्र को कहते है और दुकूल गरम, महीन, रेशमी कपड़े होते थे और अशुक वह रेशमी कपड़े थे जिनके धागे किरणों की तरह बारीक और चमकीले होते थे। कपडा अनेक प्रकार के रेशों और तन्तुओं से बनता था। आज जिनका हमे पता भी नहीं है और वह भी इतना बारीक बनता था कि छूने से ही पता लगता था कि कपडा है। उस बारीकी को मिल के कपड़े क्या पहुंचेगे बुनने की कला इस हद को पहुच चुकी थी तो साथ ही कातने की कला भी उसी हद तक पहुंच चुकी थी कि सूत के तार मुश्किल से देख पडते थे।

बृहस्पति सहिता से पता चलता है कि गाँववाले मिलकर पंचायत बनाते थे, या जब कारीगर अपनी पञ्चायत स्थापित करते थे तो एक पञ्चायतनामा लिख लेते थे, जिसमे कोई खटके की बात न रहे और सब लोग अपने कर्तव्यों मे बंधे रहे। जब कभी चोरों लुटेरों

१ हर्षचरित, चौथा उच्छ्वास, राज्यश्री के विवाह प्रकरण से।
"क्षौमैश्च बादरैश्च दुकूलैश्च लालातन्तुजैश्चांशुकैश्च नेत्रैश्च निर्मोकनिभैरकठोररम्भागर्भकोमलैर्नि श्वासहार्यैः स्पर्शानुमेयैर्वासोभि सर्वत स्फुरद्भिरिन्द्रायुधसहस्रैरिव सञ्छादित।

या बेकायदा सेनाओं का डर होता तो उसे सार्वजनिक विपत्ति समझा जाता था और उस जोखिम का मुकाबला सब मिलकर करते थे।[१] जब कोई आम फ़ायदे का काम किया जाता था, धर्मशाला, बावडी कुए, मन्दिर, बाग बगीचे आदि सबके लाभ के लिए बनवाने होते थे या कोई सार्वजनिक यज्ञ करना होता था तब पञ्चायत या गाँव की सभा ही इन कामों को सम्पन्न करती थी।[२] पञ्चायत की स्थापना के आरम्भ मे पहले परस्पर विश्वास दृढ करके किसी पवित्र विधि या लिखा-पढ़ी, या मध्यस्थ से निश्चय कराकर पञ्चायत का काम आरम्भ किया जाता था। पञ्चायत का काम करनेवाले उसके श्रेष्ठी और दो या तीन या पाँच और सहायक होते थे।[३] जो लोग इस तरह कार्यचिन्तक चुने जाते थे वे वेद के धर्म को और अपने कर्तव्य को जानते थे, अच्छे कुल के होते थे और सब तरह के कारोबार जानते थे। पञ्चायतों के सम्बन्ध मे प्राय: वही नियम अब भी बरते जाते थे। जिनकी चर्चा हम पहले कर आये है। उनको यहाँ दुहराना व्यर्थ होगा। इस काल मे कारीगरों की ऐसी कम्पनियाँ भी बनी हुई थी जिनमे पूजी के बदले सदस्यों के कारीगरी के काम लगे हुए थे। बेगारी की चाल उस समय न थी। जरूरत पडने पर सरकार या पञ्चायत काम भी लेती थी और पूरी मजूरी देती थी।

ह्युएनत्साग ने भारतवर्ष को बहुत समृद्ध और सुखी पाया। यहाँ पर सब तरह के लोगों में धरती का ठीक-ठीक रीति से बंटवारा था खेती से थोड़े खर्च मे बहुत-सा अनाज पैदा होता था और देश की

१ बृहस्पति स्मृति १७। ५-६

२ बृहस्पति सहिता १७। ११-१२

३ बृहस्पति सहिता १७। ७ १७। १७ १७। ९

बची हुई पैदावार व्यापारी लोग देश के बाहर ले जाते थे और बदले मे सोना, रत्न और उत्तम-उत्तम वस्तुये लाते थे। ससार के सभी सभ्य भागों से व्यापार बड़े सुभीते से जारी था। सोने-चाँदी की अटूट धारा व्यापार के द्वारा भारत मे उमडी चली आती थी। इसी धन की प्रसिद्धि से मुसलमान कासिम ने सिन्धु देश पर चढाई की और उसे अपने अधीन कर लिया। मुसलिम अधिकार का यही आरम्भ था और विक्रम की ग्यारहवीं शताब्दी मे इसी धन के लोभ से महमूद गजनवी के आक्रमण पर आक्रमण हुए और उसने लूट-लूट कर खजाने भरे। उसके बाद शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी ने तो विदेशी लुटेरों के लिए खैबर का मार्ग ही खोल दिया और भारत मे मुसलिम साम्राज्य की नींव डाली। सैकडों बरस बाद भारत की इसी धन की प्रसिद्धि ने कोलम्बस को अमेरिका भेजा और पाताल का पता लगवाया, और वास्कोडीगामा से उत्तमाशा अन्तरीप पार कराया और खैबर की राह से लाखों तातारियों, पठानों और मुगलों से भारत पर आक्रमण कराया।

२. मुसलिम चढ़ाई के आरंभ तक

विक्रम की लगभग दसवीं शताब्दी मे भारतवर्प अनेक राज्यों मे बटा था उनका राज्य प्रजा के लिए बड़ा सुखदायक था। उनको कर बहुत हल्का देना पड़ता था, लगान बहुत कम देना पड़ता था क्योंकि खेती के लिए धरती बहुत थी और प्रजा को किसी तरह का कष्ट न था। राजा लोग आपस मे लडते थे, एक दूसरे पर विजय कर लेते थे परन्तु प्रजा को वैरी राजा से भी कोई कष्ट न मिलता था। किसान शान्ति से हल जोत रहा है, खेती कर रहा है और उसके

पडोस मे घोर युद्ध हो रहा है। युद्ध करनेवाले खेती को कोई हानि न पहुँचाते थे। व्यापारी अपना माल लादकर देश-विदेश मे बेचने को लेजाता था। युद्ध करनेवाले सैनिक उनको नहीं छूते थे। सिन्ध के सिवाय और कहीं भी अहिन्दू राज न था। कन्नौज, मालखेड और मुगेर ये तीन बड़े-बड़े साम्राज्य थे, पर ये अपने-अपने स्थान के साम्राज्य थे। ऐसा भी न था कि राजपूतों पर मराठों या मराठों पर बगालियों का राज हो। जहाँ कहीं भारत के और किसी प्रान्त का दूसरे प्रान्त पर अगर कोई आधिपत्य भी था तो वह इतना थोडा था कि विदेशी राज-सा प्रतीत न होता था। किसानों की रक्षा और शन्ति जीवन ने उन्हे राज के मामलों से इतना निश्चिन्त कर दिया था कि उनकी खेती-बारी अगर आज एक राजा के अधीन है और कल दूसरे राज्य मे चली जाती है तो इस हेर-फेर से उनके कारबार मे कोई बाधा नहीं पडती थी। उनके भूमिकर और ग्राम-स्वराज्य मे कोई अन्तर नहीं पडता था। इस कारण देश मे क्रान्ति भी होजाय और राज्य कितना ही बदल जाय वे इस बात से बिलकुल बेपरवाह रहने लगे। उनकी बान पड गई कि कोई भी राज हो उसकी अधीनता स्वीकार कर लेते थे। अलबेरूनी ने लिखा है कि राजा ज्यादा से ज्यादा छठा भाग कर लेता था। खेतों से, मजूरों से, कारीगरों से, व्यापारियों से सबसे उनकी आमदनी पर कर लिया जाता था। केवल ब्राह्मणों से कर नही लिया जाता था।

विक्रम की तेरहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध तक यहाँ के गाँवों का जैसा सस्थान था, पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने कुछ अधिक विस्तार से दिया है। हम उसे ज्यों का त्यों उद्धृत करते हैं[१]—

१ मध्यकालीन भारतीय सस्कृति पृ० १५३—१५५।

"शासन की सुविधा के लिए देश भिन्न-भिन्न भागो में बँटा हुआ था। मुख्य-विभाग भुक्ति (प्रात), विषय (जिला) और ग्राम थे। सबसे मुख्य सस्था ग्राम-सस्था थी। बहुत प्राचीन काल से भारतवर्ष में ग्राम सस्थाओ का प्रचार था। ग्राम के लिए वहाँ की पचायत ही सब कुछ कार्य करती थी। केंद्रीय सरकार का उसीसे सबध रहता था। ये ग्रामसस्थायें एक छोटा सा प्रजातत्र थी, इनमें प्रजा का अधिकार था। मुख्य सरकार के अधीन होते हुए भी ये एक प्रकार से स्वतत्र थी।

प्राचीन तामिल इतिहास से उस समय की शासन-पद्धति का विस्तृत परिचय मिलता है, परन्तु हम स्थानाभाव से सक्षिप्त वर्णन ही देंगे। शासन कार्य में राजा को सहायता देने के लिए पाँच समितियाँ होती थी। इनके अतिरिक्त जिलो में तीन सभायें होती थीं। ब्राह्मण सभा में सब ब्राह्मण सम्मिलित होते थे। व्यापारियो की सभा व्यापारादि का प्रबध करती थी। चोल राजराज (प्रथम) के शिलालेख से १५० गाँवो में ग्राम-सभाओ के होने का पता लगता है। इन सभाओ के अधिवेशन के लिए बडे-बडे भवन होते थे, जैसे तजोर आदि में बने हुए है। साधारण गाँवो में बडे-बडे वटवृक्षो के नीचे सभाओ के अधिवेशन होते थे। ग्राम-सभाओ के दो रूप—विचार-सभा और शासन-सभा—रहते थे। सपूर्ण सभा के सभ्य कई समितियो में विभक्त कर दिये जाते थे। कृषि और उद्यान सिंचाई, व्यापार, मदिर, दान आदि के लिए भिन्न-भिन्न समितियाँ थीं। एक समय एक तालाब में पानी अधिक आने के कारण ग्राम को हानि पहुँचने की सम्भावना होने पर ग्राम-सभा ने तालाब-समिति को इसका सुधार करने के लिए बिना सूद रुपया दिया और कहा कि इसका सूद मदिर-समिति को दिया जाय। यदि कोई किसान कुछ वर्ष तक कर न देता था, तो उससे भूमि छीन

ली जाती थी। ऐसी जमीन फिर नीलाम कर दी जाती थी। भूमि बेचने या खरीदने पर ग्राम-सभा उसका पूरा विवरण तथा दस्तावेज अपने पास रखती थी। सारा हिसाव-किताव ताड़पत्रादि पर लिखा जाता था। सिंचाई की तरफ विशेष ध्यान दिया जाता था। जल का कोई भी स्रोत व्यर्थ नहीं जाने पाता था। नहरो, तालावो और कुओ की मरम्मत समय-समय पर होती थी। आय-व्यय के रजिस्टरो का निरीक्षण करने के लिए राज्य की ओर ने अधिकारी नियुक्त किये जाते थे।

"चोल राजा परातक के समय के शिलालेख से ग्राम-सस्थाओ की निर्माण-पद्धति पर वहुत प्रकाश पडता है। उसमें ग्राम-सभा के सभ्यो की योग्यता अयोग्यता संवंधी नियम, सभाओ के अधिवेशन के नियम, सभ्यो के सार्वजनिक चुनाव के नियम, उपसमितियो का निर्माण, आय-व्यय के परीक्षको की नियुक्ति आदि पर विचार किया गया है। चुनाव सार्वजनिक होता था, इसकी विधि यह होती थी कि लोग ठीकरियो पर उम्मीदवार का नाम लिखकर घडे में डाल देते थे, सवके सामने वह घडा खोलकर उम्मीदवारो के मत गिने जाते थे और अधिक मत से कोई [illegible] चुना जाता था।

जनता पर जो सवसे अधिक व्यापक

[illegible] के राजकीय कार्यो से उदासीन

[illegible] वडे-वडे परिवर्तन हो जायें, परन्तु

[illegible] साधारण जनता में कोई परिवर्तन नहीं

[illegible] को परतत्रता का कटु अनुभव कभी नहीं

[illegible] देश के भिन्न-भिन्न राज्यो के किए यह कठिन

[illegible] तक की सव वातों की तरफ ध्यान रख सके।

भारतवर्ष में इतने परिवर्तन हुए, परन्तु किसीने पंचायतो को नष्ट करने का प्रयत्न नहीं किया।"

मुगल बादशाह अपने पतनकाल मे जब भूमिकर अत्यधिक ओर वेदर्दी, कडाई और पशुता से वसूल करने लगे और ब्रिटिश सरकार ने भी वही नीति बराबर जारी रखी तो वही पंचायतें अत्याचार और हृदयहीनता के साथ सहयोग न कर सकी और अन्तत. टूट गई। पटवारी जमींदार, तहसीलदार उसके शहने, सिपाही सभी मनमानी करने लगे। प्रजा की सुननेवाला कोई न रह गया। अदालतें, वकील, मुख्तार, पेशकार, मुशी, मुहर्रिर, दलाल, सबके सब किसान को बेतरह चूसने लगे और वह बेचारा बरबाद हो गया।

परमाध्यमिक काल

१. मुगलों से पहले

तारीख फीरोजशाही में बरनी ने अलाउद्दीन खिलजी के राज में उन भावों का विवरण दिया है, जिन पर कि उस समय के अनाज, तेल, घी, नमक आदि बादशाही हुक्म से बिकते थे। उसने जो भाव दिये हैं उनको आजकल के संयुक्तप्रान्त के माने हुए तौल मे नीचे दिया जाता है।

गेहूँ	एक पैसे में	दो सेर
जौ	"	साढे तीन सेर
धान	"	तीन सेर
खडी माश	"	तीन सेर
चने की दाल	"	तीन सेर
मोठ	"	एक पसेरी
खाड	"	साढे चार छटाँक
गुड	"	अठारह छटाँक
मक्खन	"	साढे चौदह छटाँक
तिल्ली का तेल	"	साढे सत्रह छटाँक
नमक	"	नौ सेर

यह भाव बादशाह के हुक्म से दिल्ली के लिए मुकर्रिर होगये थे। कोई एक धेला भी बढ़ा नहीं सकता था। यह इतना सस्ता है

कि जल्दी विश्वास नहीं होता, पर उस समय खाने-पीने की सब चीजें इतनी सस्ती थीं कि इस भाव से लोग सन्तुष्ट थे। यह भाव उस समय सस्ते नहीं समझे जाते थे। यह इतने ऊचे भाव थे कि सूखे के समय मे भी दिल्ली मे गल्ला भरा रहता था। भाव महँगा करने के लिए गल्ले की विक्री रोक लेना या नाज को जमाकर रखना घोर अपराध था जिसके लिए बडा दण्ड मिलता था। किसानों को अपना लगान देने के लिए अनाज का एक भाग दे देना पडता था। अपने खर्च से ज्यादा बचा हुआ अनाज जहाँ पैदा होता था वहीं किसानों को वेच देना पडता था। कपड़े, खाँड, शकर, चीनी, घी और तेल सबके भाव बाजारों मे ठहरा दिये जाते थे। सब व्यौपारियों को चाहे वह हिन्दू हों या मुसलमान, ठहराये हुए भाव पर लेना-देना पडता था। व्यापारी लोग उसी बाजार मे अत्यन्त सस्ता खरीद कर उसके आस-पास अत्यन्त महंगा वेच नहीं सकते थे। इस तरह बादशाहत के अन्दर सब बाजार कायदे कानून के अन्दर जकड़े हुए थे। शहन-ए-मण्डी जिस किसीको कायदे के खिलाफ चलते हुए देखता था कोड़े लगाता था। दुधार गाय तीन-चार रुपये मे और बकरी दस-बारह या चौदह पैसों मे मिल जाती थी। कोई दुकान पर जो कम तौलता था तो वजन मे जो कमी होती थी, उसके चूतडों का माँस काटकर पूरी की जाती थी। जो दूकानदार जरा भी गड़वड करता पाया जाता था, लात मारकर बाजार से निकाल दिया जाता था। इसका फल यह होता था कि बनिये कुछ ज्यादा ही तौलते थे। बरनी ने इसके चार कारण बताये है। (१) बाजार के कायदों की सख्त पाबन्दी (२) करों का कडाई से उगाहा जाना। (३) लोगों मे सिक्कों का बहुत कम प्रचार। (४) कर्मचारियों की निष्पक्षता और ईमानदारी।

फीरोजशाह के समय में कर और भी घटा दिया गया। जिन खेतों की सरकारी नहरों से सिंचाई होती थी उनसे पैदावार का दहियक अर्थात पैदावार का दसवाँ भाग लिया जाता था। खाने पहनने की चीजे इतनी सस्ती थीं कि अकाल के दिनों मे भी लोग सहज मे विपत्ति काट देते थे। महसूलों और लगानों की कमी से खेती और व्यापार को बहुत लाभ हुआ। शम्स सिराज अफीफ ने नीचे लिखे भाव दिये है—

गेहूँ	एक पैसे मे	पौने दो सेर
जौ	"	साढे तीन "
और अनाज	"	" " "
दाल	"	" " "
घी	"	पौने तीन छटाक
चीनी	"	ढाई "

कहते है कि उस समय बिना खेती के धरती का एक टुकडा नहीं बचा था।

मध्यभारत मे बहमनी राज्यों के समय मे दशा कुछ बुरी न थी। इतिहास से पता चलता है कि जैसा प्राचीन काल से बराबर चला आता था उस समय गाँव-गाँव अपना स्वतंत्र शासन रखते थे, हरेक गाँव में पंचायत रहा करती थी जिसका सरपंच उत्तर भारत मे मुखिया या चौधरी कहलाता था और दक्षिण भारत में अयगर कहलाता था। मुखिया या अयगरों को या तो पंचायत की ओर से खेत मिल जाता था या फसल पर किसान लोग उपज का कुछ अंश दे देते थे। यह अयगर या मुखिया पंचायत की ओर से छोटे-छोटे मुकद्दमे फैसल करते थे, मालगुजारी उगाहते थे। अमन और शान्ति

रखते थे। इन्हीं लोगों के द्वारा राजा और किसान के बीच सम्बन्ध बना रहता था। जान पड़ता है कि यही मुखिया या अयगर काल पाकर जमींदार बन गये। उस समय लगान जरूर बढ़ गया था परंतु जितना बढ़ा हुआ था उस हिसाब से वसूल किया जाना सिद्ध नहीं होता। लगान के सिवाय पचासों तरह के और महसूल मुसलमान बादशाहों ने लगा दिये थे जिनका व्यवहार शहरों से अधिक था। चाहे इन सब उपायों से राज्य की आय बहुत बढ जाती रही हो परन्तु पूरा महसूल वसूल होकर शाही खजाने तक पहुँचने मे सन्देह है। यह बात सचाई से कही जा सकती है कि आमदनी के इन उपायों मे मुसलमान बादशाह भी किसान की भलाई का बराबर खयाल रखा करता था, तो भी किसान से अब बेगार ली जाने लगी। चराई और विवाह का महसूल भी लिया जाने लगा। आज-कल के मोटरावन, हथियावन, नचावन आदि भाँति-भाँति के 'आवनों' का अभी किसीने सपना भी नहीं देखा था। लोगों को चुगी के रूप मे नाज, फल, तरकारी तेलहन और जानवरों पर भी महसूल देना पडता था। शहर मे आने का रास्ता एक ही था और फाटक पर पहरा रहता था। इसलिए शहरवाले महसूल से बच नहीं सकते थे।

शुरू-शुरू मे जब मुसलमानों ने भारत पर चढाई की तो यहाँ से बहुत-सा धन लूट ले गये। पहले के मुसलमान बादशाहों मे विजय की लालसा इतनी रहती थी कि वे बन्दोबस्त की ओर ध्यान नहीं देते थे। देश के भीतर अमन-चैन लाने का काम बलबन ने किया। उसने ठगों और लुटेरों से देश की रक्षा की और उनका दमन किया। मुसलमानों के राज मे कहीं-कहीं किसानों की दशा बिगड़

गई थी परन्तु अब किसान शान्ति से खेती करते थे और व्यापारी अपना माल एक देश से दूसरे देश मे बिना लुटे लेजाने लगे। फीरोजशाह के समय मे जब घोर काल पडा तो दिल्ली मे अनाज तीन पैसे सेर तक[1] चढ गया। अलाउद्दीन के समय मे शाही भण्डारों और खत्तों मे अनाज रक्खा जाता था और अकाल के समय मे सस्ता बिकता था। परन्तु उसके बाद उसके बनाये कानून टूट गये और चीजे मनमाने भाव पर बिकने लगीं। मुहम्मद तुगलक के समय मे नक़ली सिक्कों ने बहुत नुकसान पहुचाया। कोई दस बरस तक घोर अकाल रहा। दो बरस मे सत्तर लाख रुपये तकावी के लिए किसानों को बाँटे गये। बादशाह ने शाही खत्तों से नाज निकलवा-कर बंटवाया और फकीहों और काजियों को हुक्म हुआ कि मुह्ताजों की फेहरिस्त बनावे। मुहर्रिरों के साथ काजी और अमीर गाँव-गाँव घूमकर अकाल-पीड़ितों को आदमी पीछे तीन पाव अनाज बाँटते थे। बड़ी-बडी खानकाहे मदद बाँट रही थीं और कुतुबुद्दीन की खानक़ाह मे जिसमे चार सौ साठ आदमी नौकर थे हजारों आदमी नित्य खिलाये जाते थे। हाथ की कारीगरी को बहुत बढावा मिला। चार सौ रेशम बुननेवाले सरकारी कारखाने मे काम करते थे और सब तरह की चीजे तैयार की जाती थीं। वासफ के लिखने से मालूम होता है कि विक्रम की चौदहवीं शताब्दी मे गुजरात एक बडा अमीर प्रात था जिसकी आबादी घनी थी। इसमे सात हजार

१ आजकल अच्छी फसलो पर जो भाव होता है उससे उस समय के घोर अकाल का भाव तिगुना-चोगुना सस्ता था। अनाज की भी आज कमी नही है, पैसा तो उस समय की अपेक्षा बहुत सस्ता है। परन्तु किसान के पास पैसे कहाँ है?

गाँव और कस्बे थे और लोग धन सम्पत्ति मे रँजे-पुँजे थे। खेती से पैदावार वडी अच्छी होती थी। अंगूरों की दो फसल हुआ करती थी। धरती इतनी उपजाऊ थी कि कपास की शाखायें झाड की तरह फैल जाया करती थीं और एक बार के लगाने में वही पौधे कई साल तक बराबर कपास की ढोडियाँ दिया करते थे। मारकोपोलो ने तो लिखा है कि कपास की खेती सारे भारत मे फैली हुई थी और कपास के पेड छः-छः हाथ ऊँचे होते थे, और बीस-बीस बरस तक कपास होती थी। मिर्चे, अदरक और नील बहुतायत से होती थी। लाल और नीले चमड़े की चटाइयाँ बनती थीं जिसमें कि चाँदी और सोने के काम के पक्षी और पशुओं के चित्र कढे हुए होते थे। मारकोपोलो ने यहाँके निवासियों को सुखी और समृद्ध पाया। व्यापार में कुशल और कारीगरी में दक्ष देखा।

चौदहवीं शताब्दी मे बंगाल को इब्नबतूता ने बहुत सुखी और समृद्ध देश लिखा है। उसके समय मे वहाँ चीजें अत्यन्त सस्ती थीं और बहुत थोड़ी आमदनी का आदमी बड़े ऐश आराम से गुजर करता था। इस समय के लगभग सारे भारत मे सम्पत्ति और समृद्धि बढ़ी हुई थी। दिल्ली और आसपास के प्रांतों की आमदनी सात करोड के लगभग थी और अकेले दुआवे की आमदनी पचासी लाख थी। चीजे इतनी सस्ती थीं कि आदमी दो चार पैसे लेकर एक जगह से दूसरी जगह की यात्रा कर सकता था। दिल्ली से फीरोजाबाद तक जाने के लिए गाडी मे एक आदमी की जगह के लिए दो आने देने पडते थे। एक खच्चर किराये पर कराने के लिए तीन आने देने पडते थे। छः आने में किराये का एक घोडा मिल जाता था और एक अठन्नी देने पर एक पालकी मिल जाती थी।

काम के लिए कुली बहुत आसानी से मिल जाते थे और वे अच्छी कमाई भी कर लेते थे। सबके पास सोने और चाँदी की बहुतायत थी, हर औरत गहनों से लदी हुई थी[१] और कोई घर ऐसा न था जिनमे वड़े अच्छे बिछौने, गद्दे, मसहरियाँ और कोच न होते।

परन्तु १४ वीं शताब्दी से देश की दशा बिगडने लगी। व्यापार और खेती दोनों की दशा कुछ उतार पर हुई। चौदहवीं शताब्दी के अन्त मे महवान नामक यात्री, जो चीनी च्वागहो के साथ आया था, लिखता है कि बंगाल में चावल की दो फसलें होती है और गेहूँ, तिल, तरह-तरह की दाले, ज्वार, वाजरा, अदरक, सरसों, प्याज, भंग, बैंगन और भाँति-भाँति की साग-सब्जी बंगाल मे बहुतायत से होती हैं। केला और बहुत से फल बहुतायत से होते हैं। इस देश मे चाय नहीं होती और मेहमानों को चाय के बदले पान दिया जाता है। नारियल, चावल, ताड, आदि से शराब बनती है और बाजार मे बिकती है। इस देश मे पाँच-छः तरह के बहुत बारीक सूती कपड़े बुने जाते है। रेशमी रूमाल और टोपियाँ जिन पर सोने का काम होता है। चित्रकारी किये हुए सामान, खुदे हुए बरतन, कटोरे, इस्पात के सामान जैसे तलवार, बंदूक, छुरी, कैंचियाँ सभी तरह की चीजे इस देश मे तैयार होती है। एक तरह का सफेद कागज भी एक पेड की छाल से वनता है जो हरिन की खाल की तरह चिकना और चमकदार होता है।

१ धन की वहुतायत थी। सिक्को की वहुतायत न थी। चाँदी सोने के गहने वनते थे। यह वहुमूल्य धातुये उचित रीति पर कला के काम मे आती थी। आज इस दरिद्र देश मे जब आदमी दानो को तरस रहा है, गहने कहाँ पावे। परन्तु गहनो का जहाँ थोडा बहुत रिवाज है वहाँ उसी प्राचीन कला की छाया समझनी चाहिए।

अकबर का राज्यकाल पिछले दो हजार बरसों के भीतर सब तरह से बहुत अच्छा समय समझा जाता है। यह समय आजसे केवल साढे तीन सौ बरस पहले हुआ है। हम इस काल से अपने काल का मुकाबला कर सकते है। हम गेहूँ के भाव को प्रमाण मानले तो आज कल उसे पन्द्रह-सोलह गुना बढ़ा हुआ पाते है। दूध का भाव ग्यारह गुना बढा हुआ है। घी सोलह गुना ज्यादा मॅहगा है। परन्तु मजूरी का भाव कितना बढा ? पहले एक रुपया रोज मे बीस मजूर या बीस कुली मिल जाते थे। आज शहरों मे ज्यादा से ज्यादा वडा रेट दस रुपये में बीस कुली है। इस तरह चीजों का भाव जितना ऊँचा चढ गया है उतनी ऊँची मजूरी नहीं चढी। होशियार से होशियार बढई सवा रुपये रोज मे मिलता है। उस समय ग्यारह पैसे रोज मे मिलता था। बढ़ई की मजूरी साढे सात गुनी से ज्यादा नहीं बढी। यह नतीजा निकालने मे किसी अर्थशास्त्री को सकोच नहीं होसकता कि उस समय से इस समय मॅहगी सोलह गुनी बढ़ गई है और मजूरी उसके मुकाबले मे बहुत कम बढ़ी है। इससे मजूरों की दशा उस समय के मुकाबले मे बहुत गिरी हुई है। लगान उस काल मे अधिकाश पैदावार का ही एक अश लिया जाता था। किसान प्रायः रुपये नहीं देता था इसलिए जब जितनी पैदावार हुई उतने का निश्चित अंश ही देना पडा। आज तो ऐसा नहीं है। आज देने की रकम बन्दोबस्त के समय मे अन्धाधुन्ध बढ़ जाती है, फिर चाहे सूखा पड़े या चाहे टिड्डी लग जायँ या बाढ बहा लेजाय, पर किसान को सरकारी लगान उतना ही देना पडता है। किसी खेत से, जहाँ बीस मन अनाज होता था वहाँ दो मन लगान मे दे दिया जाता था। उसी खेत मे जब केवल दस मन होता तो लगान भी मन ही भर दिया जाता था और इतने

ही मे किसान का देना चुकता समझा जाता था। आज अगर किसी खेत के लगान के बीस रुपये देने है तो वह रकम देनी ही पड़ेगी, चाहे पैदावार कितनी ही कम हो। इस तरह उस समय के मुकाबले इस समय किसान की हालत बिलकुल रद्दी है।

तीसरी बड़ी बात यह है कि बादशाहों की ओर से जो कुछ लगान मुकर्रर होता था, वह सबका सब वसूल नहीं हो सकता था। आज लगान जिस कड़ाई से वसूल किया जाता उससे भी किसानों की बिलकुल बरबादी है।

२. मुगलों का समय

अकबर के समय मे खेती और किसानों की दशा वैसे ही अच्छी थी जैसी कि पठान बादशाहों के समय मे थी। अलाउद्दीन के समय में खाने-पीने, पहिनने की चीजों के जो भाव मुकर्रर कर दिये गये थे, उनकी पाबन्दी बड़ी कड़ाई से होती थी। परन्तु अकबर के समय मे वह कड़ाई नही थी, तो भी सभी चीजें बहुत सस्ती थीं। इससे पता चलता है कि उस समय लोग बहुत सुखी और धनवान थे। उसके समय मे जो सिक्का चलता था और जिस मन के तौल का प्रमाण माना जाता था उसका वर्णन आईने-अकबरी मे मौजूद है। आजकल जो सिक्के चलते है और जो तौल का प्रमाण है वह तब से बहुत भिन्न है। हिसाब लगाकर हमने नीचे आजकल के हिसाब से उस समय के हिसाब दिये है—

गेहूँ	एक पैसे में	तेईस छटाक
जौ	,,	पैंतीस ,,
उत्तम से उत्तम चावल	,,	ढाई ,,

अत्यन्त मामूली चावल	,,	चौदह	,,
मूग की दाल	,,	साढे पन्द्रह	,,
माश की दाल	,,	सत्रह	,,
मोठ की दाल	,,	तेईस	,,
चना	,,	साढे सोलह	,,
ज्वार	,,	अट्ठाइस	,,
सफेद चीनी	,,	सवा दो	,,
शकर	,,	पाच	,,
घी	,,	पौने तीन	,,
तिल का तेल	,,	साढे तीन	,,
नमक	,,	सत्तर	,,
दूध	,,	ग्यारह	,,

इस तरह गेहूँ रुपये मे सवा दो मन से ज्यादा मिलता था और मामूली चावल डेढ़ मन के लगभग मिलता था। सबसे उत्तम प्रकार का चावल दस सेर का था। घी रुपये मे साढ़े दस सेर पडता था। दूध का भाव एक रुपये मे नौ पसेरी था। और सब तरह की चीजे भी इसी तरह के भाव पर मिलती थीं। मामूली भेड रुपये डेढ रुपये मे मिल जाती थी। भेड का मांस एक रुपये में अठारह सेर मिलता था। मजूरी भी बहुत सस्ती थी। रुपया रोज मे बीस मजूर काम कर सकते थे। बडा ही होशियार बढई ग्यारह पैसे रोज मे काम करता था। एक मर्द के लिए एक महीना भर के अनाज का खर्च साढ़े तीन आने से ज्यादा नहीं था। उस समय का अमीर से अमीर आदमी अपने भोजन मे आठ आने महीने से ज्यादा खर्च नहीं कर सकता था। शहर के रहनेवाले पाँच आदमियों के एक अमीर परिवार का

सारा खर्च तीन रुपये महीने से ज्यादा नही होता था। यह शहर के रहनेवालों का खर्च हुआ। देहात के रहनेवालों को तो पैसे खर्च करने का कोई काम न था। खेत की पैदावार से ही जब शहरवाले जीते थे, तब देहातों के क्या कहने है।

कताई और बुनाई का काम पहले की तरह सारे भारत मे फैला हुआ था और अब इन कामों मे मुसलमान भी पूरा हिस्सा ले रहे थे। राजधानी आगरे में और फतहपुर-सीकरी मे बारीक कपडों के सिवाय शतरंजी, कालीने और बहुत अच्छे-अच्छे फर्श और पर्दों के कपड़े भी बुने जाते थे। गुजरात मे पाटन और खान देश मे बुरहान-पुर और ढाके मे सुनारगाँव सूती कपडों के लिए मशहूर थे। इन कपडों का नाम ही ढाका, पाटन, बुरहानपुरी और महमूदी आदि मशहूर था। सब तरह के सूती माल का खास बाजार बनारस था। पटने में भी कपास, खद्दर, खाँड, अफीम आदि का बडा भारी व्यापार था। फैजाबाद जिले का टाँडा रुई के माल का बहुत वडा बाजार था। गाँव के उद्योग-धन्धे जैसे युगों से चले आते थे अकबर के समय मे भी उसी तरह से बराबर होरहे थे। उसमे किसी तरह की कमी नहीं आई थी। गाँव और किसान और उसके जान-माल की रक्षा कुछ तो किसान आप ही कर लेता था, कुछ पञ्चायत के प्रबन्ध से होता था और कुछ सरकारी बन्दोबस्त भी था। कोई ऐसा कारण समझ मे नही आता कि हम किसान को आज के मुकाबले उस समय कम सुरक्षित समझे। आज भी लुटेरों से किसान उसी तरह सुरक्षित है जैसे उस समय था। परन्तु अकबर सहृदय शासक था और आज का शासन निष्प्राण हृदयहीन यंत्र है, जो निस्सहाय किसान को चूसकर उसका सारा तेल निकाल लेता है

और उसे रक्तहीन छोड देता है। किसान की क्या रक्षा हुई ? इस यत्र से उसकी रक्षा करनेवाला कौन है ?

जहाँगीर और शाहजहाँ तो अकवर के पद चिन्ह पर चलते थे। उनके समय मे गावों की दशा, भारत की आर्थिक और सामाजिक दशा वैसी ही रही जैसी अकवर के समय मे। औरंगजेव के समय मे अवनति का कुछ आरम्भ हुआ। उसके वाद के वादशाहों ने तो लुटिया ही डुवोई।

३. औरंगजेव काल और ब्रिटिशों का चूसनेवाला रोजगार

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक वोल्ट्स नामक कर्मचारी ने लिखा है कि संवत् १६४७ मे मलवार के समुद्रतट पर अंग्रेजी वेड़े ने हिन्दुस्तानी जहाजों की अन्धाधुन्ध लूट की और अपार धन इकट्ठा कर लिया। वंगाल मे जाव चानाक नाम के अफसर के अधीन, जो कि हुगली मे ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सवसे वड़ा कारखानेदार था, अग्रेज सेना के भाग्य ने वहुतसे पलटे खाये। वम्वई मे कम्पनी के गवर्नर सर जान चाइल्ड ने अपने नासमझी के व्यवहार से सम्वत् १७४७ के आषाढ के महीने तक युद्ध जारी रखा। यह व्यवहार कम्पनी के लिए घातक ठहरा क्योंकि इसमे कम्पनी के साठ लाख से अधिक रुपये का नुकसान हुआ। उनके साथ जो रिआयतें की गई थीं वे छिन गई और भारतीयों और मुगलों के वीच से उनकी साख उठ गई। सूरत के सूवेदार सैदी याकूव ने वम्वई पर दखल कर लिया, कम्पनी के कारखानेदारों को कैद कर लिया और उनकी गर्दनों मे जंजीर वँधवाकर सड़कों पर फिराया।

इस युद्ध में हार जाने के कारण अंग्रेजों को संधि की प्रार्थना करनी पडी और उस समय के सम्राट औरंगजेब से इस प्रकार क्षमा माँगनी पडी। उन्होंने अंग्रेज राजदूत के नाम से अपने दो कारखानेदारों को दिल्ली भेजा। एक तो जार्ज वैल्डन था और दूसरा अब्राह्मनवार नाम का यहूदी था। दोनों औरंगजेब के हुजूर मे लाये गये। दूतों के लिए यह एक विलकुल नया ढंग था। उनके दोनों हाथ बँधे हुए थे और उनको सम्राट के सामने साष्टाग दण्डवत् करना पडा। सम्राट ने वडी लानत मलामत की और तब पूछा कि तुम क्या चाहते हो? उन्होंने बडी दीनता से अपने कसूरों को कबूल किया और माफी माँगी। फिर यह प्रार्थना की कि जो फरमान हुजूर से जब्त किया गया है वह फिर जारी किया जाय और सैदी को सेना सहित वम्बई के टापू से लौटा लिया जाय।

औरंगजेब बडा दयालु और बुद्धिमान राजा था। उनकी प्रार्थना स्वीकार करली और इस शर्त पर माफ कर दिया कि नौ महीने के अन्दर गवर्नर चाइल्ड हिन्दुस्तान छोड दे और फिर न लौटे। फरमान इस शर्त के ऊपर जारी किया गया कि जिस रिआया को लूटा गया है, जिनसे कर्ज लिया गया है और जिनका जो कुछ अंग्रेजों से नुकसान हुआ है उन सबको धन देकर सन्तुष्ट कर दिया जाय। मुगल सम्राट की कृपा से मामला तय हो गया और बङ्गाल मे कम्पनी के एजेण्ट जाबचानाक ने अंग्रेजों को फिर से अपने कारखानों मे आने के लिए आज्ञा प्राप्त कर ली। इसके बाद कम्पनी ने भारत के कई भागों मे अपने कारखाने खोल लिये। ये कारखाने अधिकाश कपड़े के थे। कपड़े का रोजगार औरंगजेब के समय में बहुत बढा-चढ़ा था। उत्तर भारत मे भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक

गाँव-गाँव मे चरखा कतता था और खद्दर बुना जाता था। मुगलों के राज के अन्त तक और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य के आरम्भ तक वाफ्ता के लिए पटना, टाँडा, चटगाँव, इलाहाबाद, खैराबाद, बीरभूम और लखीमपुर मशहूर थे। इन स्थानों के सिवाय खासे के लिए हरियल, शान्तिपुर, मऊ और लखनऊ का नाम था। चन्दरकोना, शान्तिपुर और हरीपाल की डोरिया सबसे अच्छी समझी जाती थी। महमुदी के लिए टाँडा, इलाहाबाद खैराबाद, जोहाना और लखनऊ का नाम था। ढाका, पटना, शातिपुर, मेदनी-पुर, गाजीपुर, मालदह और बनारस आदि स्थान मशहूर थे। सन्नो के लिए और तरींदम के लिए इन सब स्थानों के सिवाय हरीपाल, पुढ़ावल, कासिमाबाद, शान्तिपुर, बालासोर और कोहाना खास जगह समझी जाती थी। ये सब इन कपडों के बाजारों के नाम है। इन बाजारों के आसपास के गाँवों मे बड़े जोरों से इन कपडों का काम होता था। इन गाँवों की संख्या अनुमान से कई लाख की होगी। क्योंकि उस समय विदेशों मे यहाँ के बने कपड़े जाया करते थे। सम्वत् १८६२ के लगभग बंगाल के व्यापार के सम्बन्ध मे डाक्टर मिल्बर्न के Oriental Commerce (पूर्वी वाणिज्य) की जिल्दों से बड़े काम की गवाही मिलती है। उत्तरी भारत भर मे ये कपड़े बडी मात्रा मे तैयार होते थे। इसमे ये अंक मिलते है :—

सम्वत् १८६२ के लिए

बगाल का वाणिज्य किस स्थान से था।	आयात रुपयो में जिसमें प्रधानत सोना, चाँदी आदि कोष शामिल था।	निर्यातकपडे के थानो का
१ लदन	६७७२२)	३३१५८२
२ डेनमार्क	२१३५)	३३७६३२

३ लिसबन		१२१३२५३
४ अमेरिका (सयुक्तराज्य)	२५०९६)	४७६३१३२
५ लका		१०३९४४
६ सुमात्रा		८५०८९
७ कारोमण्डल का किनारा	११५३९०)	(विशेषत माल) ४०१७९२
८ खलीज, फारस और अरब		८४५७८८
९ पेगू		८२२५४
१० पूलोपिनेग पूर्ववर्ती देश		८१६६१२
११ बटेविया		९१५९९६
१२ चीन	१८२१२७)	३७९४६९

नोट—चीन को २८८४६१६) की रूई भेजी गई।

ऊपर लिखी सारिणी मे जो बाहरी व्यापार का प्रमाण मिलता है वह इतना तो स्पष्ट कर देता है कि भारत के गाँवों मे कताई-बुनाई का काम बड़े जोरों से चल रहा था। दक्षिण भारत मे भी इस काम मे किसी तरह की ढिलाई न थी। दक्षिण भारत के बने कपड़े मछली-पट्टम के बन्दरगाह से बाहर के देशों मे जाया करते थे। दक्षिण मे बुरहानपुर मे कपड़ों के शाही कारखाने थे और मछलीपट्टम मे और उसके आसपास के अनगिनत गाँवों मे भाँति-भाँति की छीटे तैयार होती थीं और संसार मे भारत का नाम फैलाती थीं। गोलकुण्डा के राज मे खान से हीरे, जवाहिर की खुदाई होती थी और गाँव-गाँव मे इस तरह के कारबार थे। राजधानी हैदराबाद के पास के दो गाँव निर्मल और इन्दूर मे लोहे का कारबार इस दर्जे को पहुँचा हुआ था

कि निर्मली और इन्दूरी तलवारें, वरछे और खंजर यहीं से सारे भारत मे जाते थे। और दमिश्क की मशहूर तलवार के लिए यहीं से लोहा जाता था और शमशीर हिन्द का नाम मशहूर करता था। हीरे और सोने के लिए गोलकुण्डा का राज संसार में प्रसिद्ध था। और मछलीपट्टम के बन्दरगाह से भारत के जहाज ससार के समुद्रों मे आते-जाते थे। खेती उसी तरह वहाँ भी उपजाऊ थी जैसी कि उत्तर भारत मे। और जंगलों की पैदावार उसी तरह धन-धान्य देनेवाली थी। सारे भारत मे जहाँतक किसानों का सम्बन्ध है निरन्तर शान्ति का साम्राज्य था। किसानों का इतना आदर था कि कड़ाई करनेवाले हाकिमों की जब लोग शिकायत करते थे तो वह बहुत करके बरखास्त कर दिये जाते थे। शाहजहाँ ने दाराशिकोह को राजगद्दी पाने के लिए अपनी बीमारी में यही उपदेश किया कि किसानों को और सेना को खुश रखना। औरंगजेब ने अपने लडकों को रैयत को खुश करने के लिए बारम्बार उपदेश किया है। इन बादशाहों का जैसा उपदेश था वैसा ही अपना आचरण भी था। औरगजेब की बादशाहत के जमाने में प्रजा को कुछ कष्ट होने लगा। प्रजा पर जुल्म होने लगा। औरंगजेब अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक कट्टर था। हिन्दुओं पर उसकी कडी निगाह थी। उसने सारी हिन्दू प्रजा पर जजिया लगाया और मुसलमानों का पक्षपात किया। साधारणतया कई प्रकार के महसूल जो हिन्दुओं को देने पडते थे, मुसलमानों को नहीं देने पडते थे। अनेक अपराधों में मुसलमान छोड दिया जाता था क्योंकि काफिर हिन्दुओं के विरुद्ध अपराध करने में मुसलमान दोषी नहीं समझा जाता था। किसान साल के साल मेहनत करता था परन्तु लड़ाई के कारण शत्रु या बलवान जमींदार उसे

लूट लेता था या उसके धन का अपहरण कर लेता था। सम्वत १७१५ और १७१६ के लगभग इन्हीं कारणों से अनाज मँहगा विकने लगा था। नाके-नाके पर, घाटों पर, पहाडी गुजरगाहों पर और सरहदों पर जो माल गुजरता था उस पर राहदारी का माल का दशमाश महसूल देना पडता था। यह कहलाता था राहदारी का महसूल। परन्तु महसूल लेनेवाले लोग जुल्म करते थे और कडाई करते थे और कई गुना अधिक वसूल कर लेते थे। इससे किसानों के ऊपर सारा वोझ आ पडता था। औरंगजेब ने पीछे इस तरह के महसूल उठा दिये तव कहीं जाकर भाव सुधरे और अनाज ठीक तरह से विकने लगा।

इन सव वातों के होते हुए भी मुगलों के साम्राज्य के अन्त मे भी गल्ले का भाव प्रायः अकबर के समय के ही लगभग रहा।

कम्पनी का कठोर राज्य

ईस्ट इंडिया कम्पनी सवत १६५७ मे ७० हजार पौंड की पूँजी के साथ भारत से रोज़गार करने के लिए कायम हुई थी। उस समय इंगलैण्ड की सरकार ने उसे एक हुक्मनामा देकर भारत के साथ रोजगार करने का इजारा दे दिया था। कम्पनी के सिवाय इग्लैण्ड का कोई वाशिन्दा भारत के साथ रोजगार नहीं कर सकता था। कम्पनी का यह हुक्मनामा हर वीसवे वरस वदला जाता था। भारत मे अशान्ति और वदइन्तजामी होने से, कम्पनी भारत की मालिक वन गई, किन्तु इग्लैण्ड मे उसका वही पहला ही पद वना रहा। उसके हुक्मनामे का हर वीसवे वर्ष वदला जाना जारी रहा।

विक्रम की अठारहवीं शताव्दी तक भारत के गाँव जैसे अनाज उपजाते थे, वैसे ही हाथ की कलाओं मे भी कुशल थे। भारत के करघों से वने हुए कपड़े एशिया और यूरोप के वाजारों को भरे हुए थे। परन्तु देश की इस कोमल कला को आर्थिक कूटनीति और लूट की भारी भुजाओं ने दवा लिया। युगों के ठोस उद्योग और रोज-गार को कुचल डाला। देश को विदेशी कपडों के सवसे वड़े मोहताज की दशा को पहुँचा दिया। इस प्रलयकारी फेरफार से, भारत का दरजा सवसे वड़े वेचनेवाले से, सवसे वड़ा खरीदनेवाला हो गया। वात यह थी कि पार्लमेण्ट और ईस्ट इडिया कम्पनी ने व्यापार मे हर तरह अपना स्वार्थ देखा। पहले तो उन्होने भारतवर्ष मे कार-

खाने खोले, और उन कारखानों मे यहाँ के दस्तकारों को काम करने के लिए मजबूर किया। धीरे-धीरे उन्होंने जहाँतक बन पड़ा, देश के भारतीय कारखानों को हथिया लिया अथवा बन्द करा दिया। परन्तु जब विलायत मे वहाँके कारीगरों ने बहुत हल्ला मचाया, तब बाधक कर लगाये गये।

विक्रम की उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल मे, विलायत की दस्तकारियों को बढाने के लिए उन्होंने हिन्दुस्तानी माल को विलायत जाने से रोकनेवाले कानून बनाये। उनकी यह निश्चित नीति रही कि भारत विलायत की दस्तकारियों की उन्नति का एक साधन बन जाय और वहाँ के कारखानों तथा करघों के लिए कच्चा माल तैय्यार करनेवाला एक देश ही रह जाय।

इस नीति का पालन सख्ती से किया गया और इसमें उन्हे सफलता प्राप्त हुई। भारत मे रहनेवाले गोरे अधिकारियों को कम्पनी के कारखानों मे काम करने के लिए, भारतीय दस्तकारों को लाचार करने की आज्ञा दी गई। भारतीय जुलाहों के गाँवों तथा उनकी जातियों के ऊपर, कम्पनी के व्यापारिक रेजिडेण्टों को बहुत बढ़े-चढ़े अधिकार दिये गये। अधिक महसूल लगाकर भारत के सूती और रेशमी कपडों का विलायत जाना रोका गया। अंग्रेजी चीजे बिना महसूल दिये ही, या कुछ नाम भरके महसूल पर भारत मे आने दी गईं।

इतिहासवेत्ता विलसन के शब्दों मे, ब्रिटिश दस्तकार ने राजनीतिक हथियारों से अपने मुक़ाबलेवाले हिन्दुस्तानी कारीगर को दबाया। क्योंकि दोनों को बराबर सुभीते होते तो ब्रिटिश कारीगर हिन्दुस्तानी का सामना न कर सकता। फल यह हुआ कि यहाँ के

लाखों दस्तकारों की रोजी मारी गई और यहाँ की सम्पत्ति के उप-जाने का एक द्वार ही बन्द हो गया।

इस देश के ब्रिटिश कालीन इतिहास मे इस दुःखद घटना का वर्णन इसलिए जरूरी है कि हम समझें कि हम इतने दरिद्र क्यों है। और हमे खेती का ही अकेला सहारा क्यों रह गया है। यूरोप में भाप के बल से चलनेवाले करघों के चल पडने से हमारे कारीगर बरबाद हो गये और जब हमारे यहाँ कल कारखाने चले तो इंग्लिस्तान अन्याय और डाह से काम लेने लगा। उसने हमारी सूत की कारीगरी पर कर बैठा दिया। इसका फल यह हुआ कि हमारे कारीगर जापानी और चीनी दस्तकारों के मुकाबले के भी नहीं रहे। तबसे यह कर हमारी भाप से चलनेवाली नई कलों का गला घोंटता रहा है। जिन लाखों करोडों दस्तकारों की रोजी मारी गई, वे बेचारे अपने-अपने गाँवों मे मजूरी और खेती आदि धंधों पर टूट पड़े, जिसे जो रोजगार पेट पालने को मिला कर लिया। बेचारे लाचार होकर भंगी डोम तक का काम करने लगे। जमीन बढी नहीं, खेतिहर बढ़ गये। पैदावार घट गई, खानेवाले बढ गये। हट्टे-कट्टे काम करने-वाले ज्यादा रोटी के लालच से विदेशों मे काम करने चले गये, गाँव उजड गये। ससार के अनेक निर्जन टापू गुलामों से बस गये। आज अब दशा यह है कि हमारे देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति का एक ही द्वार खेती रह गई है और आज हमारे देश के हर पाँच आदमी मे चार तो खेती पर ही दिन काटते है। परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा जो भूमि कर वसूल किया जाता है वह एक तो बहुत ज्यादा है, दूसरे कई प्रान्तों मे तो वह इतना अनिश्चित है कि उसमे खेती की तरक्की करने का कभी किसी को हौसला नहीं हो सकता। कर बढता ही जाता है।

इंगलिस्तान में सवत् १८५५ तक भूमिकर लगान के सैकडा पीछे ५ और २० के बीच मे था। उस समय के प्रधान मंत्री पिट ने उसको सदा के लिए ठहरा दिया। यहाँ संवत् १८५० और १८७६ के बीच मे बंगाल मे भूमिकर लगान का सैकडा पीछे ६० और उत्तरी भारत मे सैकडा पीछे ८० रक्खा गया। यह सच है कि इतना भारी भूमिकर लगाने मे अग्रेजी सरकार ने अपने पहले के मुसलमान बादशाहों की ही नकल की थी। परन्तु इन दोनों मे यह अन्तर था कि मुसलमान शासक जितना माँगते थे उतना कभी वसूल नहीं कर पाये। परन्तु अग्रेजी सरकार जो कुछ माँगती रही है उसे कडाई के साथ वसूल भी करती आई है। बंगाल के अन्तिम मुसलमान हाकिम ने अपने राज के आखिरी साल सवत् १८२१ मे सवा करोड से कम ही रुपये मालगुजारी वसूल की थी। बगाल से अंग्रेजी सरकार तीस वर्ष के अन्दर ही ४ करोड २ लाख रुपये साल की मालगुजारी वसूल करने लगी। संवत् १८५६ मे अवध के नवाब ने इलाहाबाद और कुछ और जिले अग्रेजी सरकार को दिये, जिनसे वह २ करोड २॥ लाख रुपये वार्षिक मालगुजारी माँगता था। तीन वर्ष के भीतर अंग्रेजी सरकार ने इनकी मालगुजारी बढाकर २ करोड़ ४७॥ लाख रुपये से भी अधिक करदी। मद्रास मे पहले पहल ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भूमिकर नियत किया। बम्बई मे संवत् १८७४ मे मराठों से जीती हुई भूमि की मालगुजारी १ करोड २० लाख रुपये थी। कुछ ही वर्षो के अग्रेजी शासन के पीछे वह बढाकर सवा दो करोड रुपये करदी गई और तब से वह लगातार बढ़ती ही जा रही है। पादरी हैबरन ने समस्त भारत मे यात्रा करने और सब अग्रेजी तथा देशी राज्यों का निरीक्षण करने के पीछे संवत् १८८३ मे लिखा था कि "कोई

देशी शासक इतना भूमिकर नहीं माँगता जितना हम माँगते हैं।" संवत् १८८७ मे कर्नल ब्रिग्ज ने लिखा था कि "भारत का वर्तमान भूमिकर प्रायः समस्त लगान के बराबर है। इतना भूमिकर एशिया अथवा यूरोप मे किसी भी शासक के समय कभी नहीं सुना गया।"[१]

बंगाल और उत्तरी भारत के मनुष्यों के लिए अंग्रेजी शासन के प्रारम्भिक समय के इस भारी भूमिकर का बोझ धीरे-धीरे कुछ हलका हुआ। बंगाल मे भूमिकर स्थायी नियत कर दिया गया और इसलिए कृषि की वृद्धि के साथ-साथ उसमे वृद्धि नहीं हो पाई है। अब वह लगान का केवल ३५ प्रतिशत रह गया है। (इसी मे कुछ अन्य कर भी सम्मिलित हैं।) उत्तरी भारत मे भूमिकर स्थायी तो नहीं किया गया परन्तु सम्वत् १९१२ मे वह घटाकर लगान का ५० प्रति सैकडा कर दिया गया। परन्तु पीछे कुछ नवीन कर और भी लगा दिये गये, जिनके कारण भूमिकर बढकर लगान का ६० प्रति सैकड़ा हो गया। जमीदारों ने अपना सारा बोझ इजाफा लगान करके दरिद्र किसानों पर डाल दिया। अन्त मे सब तरह से किसानों की ही बरबादी हुई।

मद्रास और बम्बई की अवस्था और भी खराब है। वहाँ कृषक लोग सरकार को भूमिकर सीधे अदा करते हैं। उनके तथा सरकार के बीच कोई जमींदार मालगुजार या ठेकेदार नहीं है। सम्वत् १९२१ मे सरकार ने आर्थिक लगान का आधा मालगुजारी के स्वरूप मे वसूल करने की अपनी इच्छा प्रकट की थी, परन्तु सरकार लगभग सारा आर्थिक लगान वसूल कर लेती है, और बेचारे किसानों को

१ श्री रमेशचन्द्रदत्त के प्रसिद्ध ग्रथ "ब्रिटिश भारत के आर्थिक इतिहास" की भूमिका मे सकलित

अपने मेहनत मजदूरी और औजारों, चौपायों इत्यादि मे लगे हुए धन पर लाभ के सिवा कुछ भी नहीं बचता। हर तीसवें बरस नया बन्दोबस्त होता है। किसान जान भी नहीं पाता कि उसका लगान किस कारण से बढ़ाया जा रहा है। उसके सामने बस दो रास्ते रह जाते है, या तो वह बढ़े हुए लगान को मान ले या अपने बाप दादों के खेत को छोडकर भूखों मरे। लगान की यह आये दिन की घट बढ खेती को बढने नहीं देती। किसानों को कुछ बचत भी नहीं होने देती और उन्हे दरिद्र और कर्जदार बनाये रखती है।

भारत मे भूमिकर केवल भारी और डावाँडोल ही नही है, बल्कि जिन सिद्धान्तों पर लगान बढ़ाया जाता है वे जग से निराले है। और देशों की सरकार जनता का धन बढ़ाने मे सहायता देती है, अपनी प्रजा को धनी और रंजी-पुँजी देखना चाहती है और फिर उसकी आय का बहुत थोडा अश उसकी रक्षा के लिए माँगती है। भारत की सरकार कर लगाकर धन के इकटठा होने मे बाधा डालती है। किसानों की आय को रोकती है और लगभग हर नये बन्दोबस्त के समय अपनी मालगुजारी बढाकर किसानों को सदा ही दरिद्र रखती है इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, सयुक्तराज्य आदि देशों मे सरकार अपनी प्रजा की आय बढाती है, उनकी वस्तुओं की खपत के लिए नये-नये बाजार ढूँढती है, भरसक बाजारों के ऊपर अधिकार जमाने की चढ़ा-ऊपरी मे महासमर तक हो जाते है, उनकी आय के लिए नवीन द्वार खोलती है उनकी भलाई के लिए मर मिटती है, और उनके बढते हुए ऐश्वर्य के साथ आप भी ऐश्वर्यवाली बनती है। भारत मे अंग्रेजी सरकार ने न तो नई दस्तकारियों के चलाने मे सहायता दी, और न उसकी पुरानी दस्तकारियों को ही नया जीवन दिया है

उलटे वह हर बन्दोवस्त के समय भूमि की पैदावार से मनमानी आमदनी करने के लिए उलट-फेर किया करती है। मद्रास और बम्बई मे लोग हर नये बन्दोवस्त को अपने और सरकार के बीच एक युद्ध समझते है, जिसमे सरकार और प्रजा के बीच परस्पर स्वार्थों की छीना झपटी होती रहती है। और इस लडाई का निर्णय करने के लिए कानून मे कोई ठीक विधान या सीमा नही है। माल के हाकिमों का फैसला आखिरी होता है जिसकी कहीं अपील नहीं है। सरकार की आय और प्रजा की दरिद्रता नित्य बढती ही चली जाती है।

धरती से जल खींचकर सूर्य्य मेघ बनाता तो है परन्तु वह मेघ अपने लिए नहीं बनाता। वर्षा के रूप मे हजार गुना अधिक फैला कर उसी धरती को लौटा देता है।[1] कवि ने अपने यहाँ कर या लगान लेने की नीति का इसी तरह हजारों गुना अधिक बखान किया है। परन्तु भारतभूमि से खींचा गया कर रूपी जल आज विदेशों मे ही बरसता और विदेशों को उपजाऊ बनाता है। हरेक देश उचित रीति से यही चाहता है कि उसके देश से वसूल किया गया टैक्स या कर वही खर्च किया जाय। अंग्रेजों के आने से पहले भारत के बुरे से बुरे हाकिमों के समय मे भी यही बात थी। पठान और मुगल बादशाह जो अपार धन सेना मे खर्च करते थे पर उससे तो यहींके बहुत से बड़े-बड़े घरानों का और लाखों परिवारों का पालन

१ प्रजानामेव भूत्यर्थं सताभ्यो बलिमग्रहीत्।
सहस्रगुणमुत्स्रष्टुमादत्ते हि रसं रविः ॥ रघुवंश । १ । १८

रवि जैसे हजारगुना बरस देने के लिए रस लेता है, वह (राजा) प्रजाओ का धन बढाने के लिए ही उनसे कर लेता था।

होता था। वे जो बड़े-बड़े सुन्दर महल बनाने मे या सुख और भोग-विलास की चीजों मे या दिखावटी ठाट-बाट में धन लगाते थे, वह धन इसी देश के कारीगरों और दस्तकारों के हाथ में जाता था और उनका हौसला बढाता था। सरदार, सूबेदार, सेनापति, दीवान, काजी और उनसे छोटे हाकिम भी अपने मालिकों की देखादेखी वैसा ही बरताब करते थे, और अनेकों मस्जिद, मन्दिर, सडके, नहरे और तालाब उनकी उदारता के गवाह है। वे धन को बेहिसाब उडाते भी थे तो वह उडकर भी भारत के ही वायुमण्डल मे फैल जाता था, कहीं बाहर न जाता था। बुद्धिमान् और मूर्ख दोनों तरह के शासकों के समय मे भी कर के रूप मे वसूल किया हुआ धन लौट कर प्रजा के ही व्यापार और दस्तकारियों को बढाता था। पर भारत मे ईस्ट इण्डिया' कम्पनी के राज्य का आरम्भ होते ही दशा बदल गई। कम्पनी भारत को एक बडी जागीर या बडा खेत समझती थी, जिसका लाभ यहाँ से जाकर यूरोप मे जमा होता था। भारत की सरकार मे मोटी तनख्वाहोंवाले और आमदनी के जितने ओहदे थे, कम्पनी अपने देशवालों को ही देने लगी। भारत की आय से व्यापार की वस्तुये मोल लेती थी और फिर उन्हे अपने निजी लाभ के लिए योरप मे लेजाकर बेचती थी। व्यापार मे लगी हुई अपनी पूँजी का भारी ब्याज वह भारत से कडाई के साथ वसूल करती थी। साराश यह कि भारत मे भारी कर से जो कुछ वसूल किया जा सकता था, उसमे-से बहुत जरूरी बन्दोबस्ती खर्चों के पीछे जो कुछ बचता था, वह किसी न किसी तरह योरप पहुँचाया जाता था।

: ६ :

विक्टोरिया के राज से वर्त्तमान काल तक

१. भारत का रक्त चूसा जाना

जब सम्वत् १८९४ मे अंग्रेजी राजगद्दी पर विक्टोरिया बैठी उस समय कम्पनी ने भारत की जितनी हानि करनी थी करली थी। भारत के रेशमी रूमाल यूरोप मे अब भी बिक रहे थे, और यहाँ के तैयार रेशमी माल पर अब भी वहाँ कडा महसूल लगता था। पार्लमेण्ट ने कमीशन बैठाकर इस बात की जाँच की कि ब्रिटिश करघों के लिए भारत मे रूई कैसे उपजाई जा सकती है, यह न पूछा कि भारतीय करघों की बढती कैसे कराई जाय। लगातार डेढ़ सदी के लगभग भारत के गोरे प्रभुओं की नीति यही रही है, कि ब्रिटिश कारखानों की बढती भारत के द्वारा कैसे की जाय। भारत के कारीगरों की भलाई का कोई खयाल नहीं रहा। भारत की बनी चीजे जो जहाजों मे भर-भर कर विलायत भेजी जाती थीं वह धीरे-धीरे सपने का धन होती गई।

हम पिछले वर्षो मे यह देख चुके, कि कम्पनी इस्तमरारी बन्दोबस्त और प्रान्तों मे बढ़ाना नहीं चाहती थी। उत्तर भारत मे उसने पहले लगान का सैकड़ा पीछे ८३ भाग मालगुजारी लगाई, फिर उसे ७५ प्रति सैकड़ा और फिर ६३ प्रति सैकड़ा घटाया। यह भी जब ठीक न ठहरा तब संवत् १९१२ मे उसे लगान का आधा

कर दिया। सम्वत् १९२१ मे यही लगान की आधी मालगुजारी का हिसाब दक्षिण भारत पर भी लगा दिया गया। ससार के किसी सभ्य देश मे खेती के मुनाफे के ऊपर आधों आध आय कर का लगाना आज तक सुना नहीं गया। पर इतने पर भी सन्तोष होता, तो भी वडी बात ?।

सम्वत् १९१५ मे कम्पनी का राज समाप्त हो गया। पार्लमेण्ट के अधिकार मे आजाने पर भी भारत को लेने के देने ही पड़े। पार्लमेण्ट ने कम्पनी के हाथों से भारत की जागीर को खरीद कर अपने हाथ मे कर लिया और इसी जागीर के मत्थे ऋण लेकर कम्पनी का देना चुका दिया। कम्पनी ने जो टोटा उठाया था, वह भी भारत के मत्थे मढा गया। साल-साल भारत ही के मत्थे सूद भी चढने लगा। लडाई चाहे संसार मे अग्रेजों को कहीं भी लडनी पड़ी तो किसी न किसी तरह वादरायण सम्बन्ध जोडकर उसका खर्च भी भारत की ही जागीर पर लादा गया। रेलें निकलीं तो मुनाफा विलायत गया, और टोटा भारतीय जागीर को सहना पडा। इस तरह पार्लमेण्ट के राज ने भारत की जागीर को और भी अधिक निठुराई से चूसना शुरू किया। भूमि और नमक इन दोनों के ऊपर कड़े से कडा महसूल लगने लगा।

सम्वत् १९३२ मे स्वर्गीय लार्ड सैलिसबरी भारत मंत्री थे। उन्होंने उसी साल अपनी एक रिपोर्ट मे इस प्रकार लिखा था—

"भारतीय राजस्व-पद्धति के बदलने की जहाँ तक गुजाइश है, वहाँ तक इस बात की भारी जरूरत है, कि किसान को जितना देना पडता है उससे कुछ कम ही, कुल देश के राजस्व के नाते वह दिया करे। नीति की ही दृष्टि से यह कोई किफायत की नीति नहीं है कि राजस्व

की प्राय सारी मात्रा उन देहातो से ही निकाली जाय, जहाँ पूँजी अत्यन्त महँगी है, और उन शहर के हिस्सो को छोड दिया जाय, जहाँ धन बेकार पडा हुआ है, और ऐशोआराम में बर्बाद होता है। भारत के सम्बन्ध में तो बडी हानि पहुँचाई जाती है, क्योकि वहाँ से माल गुजारी का इतना बडा अश बदले में विना कुछ मिले हुए देश के बाहर चला जाता है। जब भारतवर्ष का लोहू बहाना ही है, तब नश्तर उन हिस्सो में लगाना चाहिए जिनमें लोहू जमा हो, या कम से कम काफी हो। उन अगो में नही लगाना चाहिए, जो लोहू के बिना दुबले और कमजोर हो चुके है।"

लार्ड सैलिसबरी की चेतावनी पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। वही पुरानी कहानी बार-बार दोहराई जाती रही। हर बीसवे और तीसवें बरस बन्दोबस्त होता रहता है, और हर नये बदोबस्त पर मालगुजारी बढती ही रहती है। कहने को तो लगान की आधी ही मालगुजारी ली जाती है, परन्तु असल मे तो बम्बई और मद्रास मे इससे तो बढ़ी ही रहती है। मालगुजारी में और कई तरह के महसूल भी जोड दिये गये है, जिनको बढाने मे सरकार को तनिक भी संकोच नहीं होता। संसार मे कौन ऐसा देश है जिसके धन की इस निठुरायी से चुँसायी हो, तब भी उसकी खेती वर्बाद न हो जाय। भारत के किसान थोड़े मे गुजर करनेवाले होते है, परन्तु तो भी वे दरिद्र हो गये हैं, खोखले हो गये है, और सदा दुर्भिक्ष और भूख की भयानक सूरत उनके द्वार पर खडी रहती है। श्री रमेशचन्द्रदत्त लिखते है—

"घर के देने के नाम से भारत को सारी आमदनी का चौथाई हिस्सा हर साल इगलिस्तान चला जाता है। और अगर उसके साथ

वह धन भी जोड लिया जाय जो यहाँ के विलायती अफसर हर साल अपने वेतन से बचाकर इगलिस्तान भेजा करते है, तो यह रकम तीस करोड से कही अधिक हो जाती है । ससार का सबसे धनी देश ससार के सबसे दरिद्र देश से यह धन चूसने की बेहयाई करता है । आदमी पीछे १२६०) साल कमानेवाले उन लोगो से आदमी पीछे ७) माँगते है, जो लोग आदमी पीछे ३०) साल कमाते है । यह सिर पीछे ७॥) रुपया जो भारत के लोगो से अग्रेज लोग लेते है, भारत को दरिद्र कर देता है । और इस तरह भारत में अग्रेजो के व्यापार को भी हानि पहुँचती है । इस देने से अग्रेजी व्यापार और व्यवसाय को कोई लाभ नही पहुँचता, परन्तु तो भी भारत के शरीर से लगातार लोहू की अटूट धारा बहती चली जाती है ।"

यह बात बिलकुल सच है । सम्वत् १९५७ मे भारत से माल-गुजारी की सारी आमदनी सवा छब्बीस करोड रुपये हुई थी । घर के देने के नाम से साढ़े पच्चीस करोड उसी साल विलायत भेजे गये थे । यह तो साफ़ जाहिर है, कि धरती की लगभग सारी आमदनी एक न एक ढँग से विलायत चली जाती है । विलायती अफ़सर अपनी तनख्वाह की बचत जो भेजते है, वह इससे अलग है । प्रजा से जो कर किये जाते है, वह यदि देश मे ही खर्च किये जाते, जैसा कि ससार के सब देशों मे होता है, तो वह रकम प्रजा मे ही फैलती । पेशे, व्यवसाय और खेती को बढाती और किसी न किसी रूप मे प्रजा का ही धन बढाती । देश के बाहर निकल जाने पर एक कौडी भी देश के काम में नहीं आती ।

रानी विक्टोरिया का राज ६४ वर्ष के लगभग चला । इतने समय मे भारतवर्ष पर ॲग्रेजों का फौलादी पंजा बराबर जकडता

गया। महसूल बढते गये। करों का भार अन्त मे देश की दरिद्र प्रजा के ही सिर पडता गया। नमक का महसूल दरिद्रों को अत्यन्त खला, परन्तु उसे बढ़ाने मे हृदय-हीन विदेशी सरकार को कभी तरस न आया। विदेशी माल ने वाजार को भर दिया। देश के आदमियों की दस्तकारी और कारीगरी का काम छिन गया। खेती से वची हुई घडियों मे किसान खद्दर सम्बन्धी काम किया करते थे। वह सारा काम छिन गया। साल मे ६ महीने से लेकर ३ महीने तक किसान विलकुल वेकार रहने लगे। पछाहीं रोजगार की कठिन चढा ऊपरी ने यहाँके एक रोजगार के बाद दूसरे रोजगार को चौपट कर दिया। कच्ची धातुओं से पक्की धातु वनाना खानो की खुदाई, लोहे आदि की ढलाई के काम बन्द हो गये। नमक वनानेवाली एक जाति नोनिया थी, जिनका काम नमक और शोरा तैयार करना था। यह जाति तो विलकुल वे-रोजगार हो गई। नोनिये कभी-कभी कुआँ खोदने का काम करते है। अधिकाश लोग मोटी मजूरी करने लगे। कोष्टी, वुनकर, कोरी, जुलाहों का रोजगार मारा गया। वढई, लुहार आदि शिल्पी अपनी ऊँची कला भूल गये। सूत कातने की अत्यन्त प्राचीन कला इस कठिन चढ़ा-ऊपरी से नष्ट हो गई। लोगों ने चरखे उठाकर घरों पर फेंक दिये, मचानों पर डाल दिये, या लकडी की जगह चूल्हों मे लगा दिये। लाखों की गिनती मे वुनकर आदि कारीगर जव वेकार हो गये, तो उनका जहाँ सींग समाया वहीं चले गये। जिनसे हो सका, खेती करने लगे, अनेक मोटी मजदूरी से ही पेट पालने लगे। गुजरात के हजारों वुनकर भङ्गी का काम करने लगे। हथियार वारूद आदि का बनाना एकदम वन्द हो गया। इधर पैसे इतने सस्ते कर दिये गये कि जरूरत की सारी चीजे अत्यन्त मंहगी हो चलीं।

२. पैसे की माया

पैसों के भाव की कमी-वेशी करके विक्टोरिया के राज के पिछले २५ वर्षों मे भारत की विदेशी सरकार ने शकुनी का कुटिल और निर्दय खेल खेला। भारत की दरिद्र और मोहग्रस्त जनता इस कुटिलाई को कैसे समझ सकती थी। समझती भी तो कर क्या सकती थी, सरकार बारम्बार नया बन्दोबस्त करके मालगुजारी बराबर बढाती गई और किसानों को लाचार होकर ज्यादा-ज्यादा पैसा देना पडने लगा। पहले उसको थोडा पैसा जुटाने के लिए बहुत अनाज देना पडता था, यह उसे खलता था। सरकार ने पैसे का अधिक प्रचार करके एक निशाने से दो शिकार मारे। एक तो अपनी अपनी आमदनी बढाई, और दूसरे किसानों मे जो असतोप फैलता उसपर परदा डाला। किसान पैसे की माया मे फाँसे गये। अँग्रेजो ने पैसे को कुछ थोडा सस्ता कर दिया। किसानो ने देखा कि पैसा बहुत सस्ता हो रहा है, अनाज दे-दे लगे पैसे जुटाने। जब पैसे इकट्ठे होने लगे तब महीन और चमक दमकवाले कपड़े, खिलौने, लम्प, लालटेन तसवीरें, इत्र, सुगन्ध, फुलेल और भाँति-भाँति की विदेशों की बनी शौकीनी चीजे उन्हीं पैसों के बलपर खरीदने लगे, और दरिद्र किसान शौकीन रईशों की नकल करने मे अपनी बड़ाई मानने लगे। जो शहर के बच्चे रूखी रोटी और नमक कलेवा करते थे, और नंगे पाँव लंगोटी बाँधे पढ़ने या काम करने जाने मे सकोच नहीं करते थे, वही माँग काढने, बालु संवारने, फैशन बनाने और रईसों की-सी लम्बी ढीली धोती बाँधने लगे। यह सब शौकीनी की चीजें विलायती चल गईं, जो अनाज से नहीं मिलती थीं। इनके लिए पैसों की बहुत

जरूरत पड़ी। फिर शादी, ब्याह, मूडन छेदन की तरह गिरस्ती मे आये दिन हौसले बढने लगे, चढ़ा ऊपरी होने लगी। बेकार खर्चा बढ़ गया। अब हरेक को पैसे की लत लग गई। अनाज देकर अब सौदा मिलना मुश्किल हो गया। सुई, डोरा, नमक, हल्दी, सूत, रुई सब तरह की जरूरी चीजे, जो अनाज देकर मिलतीं थी, पैसे पर मिलने लगीं।

मुसलमानों के राज मे किसान जो चाहता था, मालगुजारी मे दे सकता था, चाहे अनाज दे, चाहे रुपया। विदेशी सरकार ने देखा कि अनाज लेने मे झंझट है, और जब पैदावार मारी जायगी तब तो घाटे मे रहेगे। इसलिए मालगुजारी मे अनाज लेने की रीति उठा दी गई। फिर भी जमीदार असामियों से अक्सर लगान में अनाज का अंश ले लिया करते थे। सरकार की नीति से यह भी चलने न पाया। जब जमीदारों से मालगुजारी के रुपये लिये जाने लगे, तो उन्हे भी अनाज के बदले रुपया लेने मे सुभीता पडा। माल-गुजारी और लगान की दरें ठहराई गईं। और ठहराई हुई रकमे किस्तों मे वसूल की जाने लगीं। अब जमीदार या राजा का महसूल अनाज की पैदावार पर नहीं रहा। खेत मे अनाज उपजे, चाहे न उपजे, पर राजा और जमीदार अपना महसूल बिना लिये नहीं रहते। किसान चाहे भूखों मर जाय, पर उसे लगान की रकम देनी होती थी। इसमे पैसेवालों की और भी बन आई थी। साहूकारों ने टका रुपया और आना रुपया ब्याज लगाकर किसानों को चूसना शुरू किया। किसानों को कर्ज लेने की बान पड़ गई, और एक बार जिस किसान ने कर्ज लिया, समझो कि वह खडा लुट गया। क्योंकि एक तो इतना भारी ब्याज ही देना पडता था, दूसरे ब्याज-पर-ब्याज लगाया जाता था। किसान की खेती-बारी धीरे-धीरे साहूकारी के

पास चली गई। इस तरह देश मे जमीदार और साहूकार तो बसे और किसान उजड गये। कलकत्ता, बम्बई, करांची, हैदराबाद ,मद्रास, लाहौर, अहमदाबाद, इन्दौर, आदि वड़े-बड़े शहरों मे उजड़े हुए किसान कुलीगीरी करने लगे, और लाखों इसी तरह के बे-खेत और बे-घर के मर्द औरत गिरिमिट की गुलामी करने के लिए मिरिच के देश, ट्रिनीडाट, फ़ीजी आदि विदेशी टापुओं मे चले गये। किसानों की सिधाई और भोलेपन के कारण आरकाटियों को उनके बहकाने मे बडी आसानी हुई। आरकाटी गाँव मे आया और किसान का वडा हितैषी बनकर रहने लगा। दुखी किसानों के जिनके खेत साहूकारों की ठगी के कारण चले गये थे, उसने बहकाना शुरू किया "तुम हमारे साथ कलकत्ते चलो, हम तुम्हे ३) रु० रोज की मजदूरी दिला देंगे, मजे मे खाना और बचाना, और रुपये जमा करके अपने खेत छुडा लेना। कुछ दिनों मे तो तुम जमीदारी खरीद लोगे। यहाँ क्यों अपनी मिट्टी खराब करते हो ? कलकत्ते जाने को खर्च नही है, तो किराया हम दिलवा देंगे। नौकरी चाकरी खर्च-वर्च हम सब कुछ दिलवा देंगे, मौज काटौ।" आरकाटी ने पैसों का जो जाल विछाया उसमें रोटियों को तरसनेवाला किसान फॅस गया। कलकत्ते जाकर गिरमिट लिखाकर सदा के लिए गुलाम बन गया। इन बेचारे किसानों मे से अपने जीवन मे हजारों में से कोई एक मुश्किल से जीते जी फिर अपनी मातृ-भूमि के दर्शनों के लिए लौट सका।

वे लौटे क्यों नहीं ? इसीलिए कि वे पैसे के मायाजाल मे वेतरह फॅस गये। पच्छाहीं सभ्यतावाले देशों मे पैसा रुपया वहुत सस्ता है। खाने-पीने पहिरने की चीजे वहुत मॅहगी है। और कोई बाहरी लूटनेवाला नही है, क्योंकि वहाँ के लोग आप ही कल-बल से जगत

को लूटते रहते हैं। इसीसे वे धनवान है। वे तीन-तीन रुपये रोज मजूरी भी देते है। हमारे दरिद्र किसान उनके यहाँ मजूरी करने लगे तो उन्हीं-की तरह खाने-पीने भी लगे। अपने देश मे जैसा खाते थे उसमे मान लो कि चारो आने भी खर्च हो जाते थे तो भी चार आने रोज की मजूरी करनेवाला कारीगर घाटे मे नहीं रहता था, क्योंकि उसका अपने घर का घर होता था, खेत-बाडी भी होती ही थी। परन्तु वहाँ के तीन रुपये यहाँ के चार आने से ज्यादा कीमत नहीं रखते, क्योंकि वहाँ पैसा सस्ता है और सब चीजे महगी है। वहाँ के असुरों की बुरी लतें भी लग जाती है। तीन रुपये मे दो ढाई रुपये रोज तो खर्च ही हो जाते है, बचता बहुत कम है। फिर जब वह गुलामी से छूटता है तो जो कुछ बचाया होता है वह इतना ज्यादा नहीं है कि आने-जाने का भारी खर्चा सहकर भी इतना बच जाय कि अपने लिए भारत मे खेत खरीद ले। वह अभागा इस देश मे किस बिरते पर लौटेगा? यहाँ विदेशी सरकार ने पैसों का जो मायाजाल बिछाया उसमे फसाकर जमीदार ने किसान को चूसा, साहूकार ने किसानों को चूसा और जब उसमे खून नहीं रह गया, जब वह बिलकुल बे-घर द्वार होकर बरबाद होगया, तब उसकी बची हुई भूखी हाड की ठठरी को आर-काटी ने रेल का किराया और भोजन देकर मोल ले लिया। अपने भाई को हंसे लेकर राक्षसों के हाथ बेच दिया। यह सब कुछ विदेशी लुटेरों के लिए किया गया। जानकर नहीं अनजान मे, और पैसों की माया मोह मे फंसकर। जिसके खेती-बारी, जगह-जमीन नहीं रह गई, और रगों मे खून भी नही रहा, वह बेचारा इस देश मे रह कर सूखी ठठरी मे प्राणों को किस सहारे रखता।

यह तो कथा हुई सबसे नीची श्रेणी के लोगों की जो खेती भी

करते थे, और मजूरी भी करते थे। जो उनसे अच्छे थे और भूखों नहीं मरते थे, वे भी पैसो के मायाजाल मे फँसकर बरबाद हुए। ये लोग अपने को ऊँची जाति के समझते थे। इनकी मोटी समझ मे भी जो ज्यादा खर्च करे वही बडा इज्ज़तदार समझा जाता। इसीलिए यह अपने को समाज मे ज्यादा इज्जतदार सिद्ध करते रहे। इसमे उन्हे रुपयों की जरूरत पडा करती थी। राली ब्रदर्स के एजेण्ट फसल तैयार होने के पहले से ही घूमा करते थे। राली ब्रदर्स विलायत का एक भारी व्यापारी है। जो लाखों मन अनाज भारत से खींच ले जाता है। इसके कारिन्दे रुपया लेकर गाँव-गाँव घूमते है, खड़ी फसल कूत करके खरीद लेते है। या नाज का भाव पहले से ठहरा कर किसान को पहले से रुपया दे देते है, और सस्ता अनाज और रुपये का सूद किसान से वसूल कर लेते है। पैसों की माया मे पडकर किसान अपने खाने के लिए काफी अनाज तक नहीं रखते। यह देखकर कि रुपया ज्यादा मिलेगा, भूखों मरकर भी अन्न बेच डालते है। यह खूब जानते हैं कि पैसों से पेट नहीं भरता, फिर भी पैसों पर लट्टू हो रहे हैं।

हमारे देश मे पैसों की माया मे फँसकर बे-जरूरी चीजों की खेती अगर न की जाती और पहले की तरह अनाज और कपास का ही अधिकार खेतों पर रहता तो भी हमारी दरिद्रता इतनी अधिक न होती। हमारे किसान पैसों की माया मे फँसकर विदेशी सरकार से दादनी लेने लगे, और खेतों से जहाँ अमृत उपजाते थे, जहर बोने और उपजाने लगे। पोस्ते की खेती करके अफीम बेचने लगे, तम्बाकू की खेती करके देश मे जहर फैलाने का उपाय करने लगे। तम्बाकू और अफीम ने किसानों को मोह में फसाकर कहींका न रक्खा। ताडी से, शराब से, गाँजा, भंग, चरस आदि जितनी नशीली

चीज है, सब से विदेशी सरकार को आमदनी होने लगी। इसलिए इन सब चीजों का प्रचार किया गया, और किसान लोग पैसे की माया मे फंसकर उस महापातक के काम मे भी पैसा-पूजकों की मदद करने लगे। पैसे की माया ने किसान को बरबाद कर डाला।

पैसे की माया अपार है। पैसा अंग्रेजों का देवता है, असुरों का परमात्मा है। उसकी माया मे जिसे देखो वही फंसा हुआ है। किसान का तो सारा रोजगार पैसे ने छीन लिया है। बारीक, चिकना, चमकीला, सस्ता मलमल देखकर किसान लट्टू होगया। मोटा खद्दर उसके बदन मे चुभने लगा। कारिन्दे ने ज्यादा पैसे देकर कपास की फसल खरीद ली। उसने भी खुशी से बेच दिया। सोचा कि "इन्हीं पैसों से महीन मलमल खरीद लूंगा। ओटने, धुनने, कातने, बुनने की मेहनत से बच जाऊगा। और इन्हीं कपड़ों से महीन कपडा भी मिल जायगा। मेरे घर की औरते बारीक सूत नहीं कातती।" इस तरह जो पैसा विलायत ने अनाज और कपास के लिए किसान को दिया था, वही पैसा बारीक कपड़ा पहनाकर फिर लौटा लिया। देखो पैसे की माया मे डालकर किसान को कैसा बेवकूफ बनाया। किसान के घर मे दरिद्र का बास होगया। चरखा, चक्की और रई का चलना बन्द होगया। चीनी का रोजगार, पटसन, सन, सूत, ऊन की कताई-बुनाई का रोजगार उसके हाथ से छिन गया। देश के लाखों बुनकर, कोली जुलाहे बेरोजगार होगये। जब कोई रोजगार न रहा, लाचार हो, कुली, भंगी, डोम आदि का काम करने लगे या विदेश चले गये। जिन लोगों को खेत मिल सके वे खेती करने लगे, या खेती मजूरी दोनों करने लगे। इस तरह खेती करनेवाले बहुत बढ़ गये, और उनके पेट का भी बोझा खेती के ही कन्धो पर आपडा।

अब खेत की जमीन बढानी पडी। वह कहाँ से आये? गाँवो की गोचर भूमि जो गउ-बैलों के लिए छूटी रहती थी वह खेती के काम मे आने लगी। बेचारी गउओं को उनकी मिल्कियत मे निकाल बाहर किया गया। पैसों की माया ने उनकी रोजी छीनकर भी उन्हे कुशल से न रहने दिया। उनकी जान के लिए बडी-बडी कीमत लगने लगी। जीती गऊ का कम दाम मिलने लगा, पर उसकी लाश पर ज्यादा पैसे मिलने लगे। जीती गऊ का दाम १०) था, तो उसके चमड़े का दाम १३) मिलने लगा। और मारी हुई का मास और उसकी हड्डी का दाम अलग खडा होने लगा। पैसे की माया मे फँसकर किसान ने अपना तन बेच दिया, घर-द्वार बेच दिया, अब उसने अपनी गऊ माता को भी बेचकर नरक का रास्ता साफ कर लिया। गोरी सेना को खिलाने के लिए हजारों गाये इसी तरह खरीद खरीद कर काटी जाने लगीं। पैसे की माया ने न गोचर-भूमि रहने दी और न गोचर-भूमि के भोगनेवालों को जीता छोडा। दही, दूध, घी पहले खास खाने की चीजे थीं। यह आज अमीरों को भी जितना चाहिए उतना नसीब नहीं। पैसे की माया हमारे सामने की परसी थाली छीन ले गई। बच्चों के मुह से दूध की प्याली हटा ले गई। और नकली घी, रेशम, चीनी आटा आदि सभी चीजे उसने फैलाई। उसने हमे हड्डी, चरबी, मास खिला और चबवा कर छोडा। एडी से चोटी तक हमे हिसा का अवतार ही नहीं बल्कि भूखा, नगा राक्षस बना डाला।

हिसाब करनेवालों ने पता लगाया है, कि इन्हीं पैसों की माया मे फँसकर आज किसान के सिर पर सात आठ अरब रुपयों का कर्जा है। जबतक किसान इस भयानक कर्ज के बोझ से पिस

रहा है, तबतक गाँव का सुधार क्या होगा। जबतक ग्यारह करोड किसान साल मे नौ से तीन महीने तक बेरोजगार रहेंगे, जबतक हमारा अन्न दूसरे खाते रहेंगे, और हम मुँह ताकते रहेंगे, जबतक हम अपने तन ढकने के लिए मंचेस्टर के मुहताज रहेंगे, जबतक गोरों का पेट भरने के लिए हमारा गोधन बरबाद होता रहेगा, जब तक हम ठंडे रहेंगे और हमारे हृदयों मे अपने को पच्छाहीं सभ्यता की गुलामी और पैसों की मायाजाल से छुटकारा पाने के लिए आग न लग जायगी, तबतक गाँवों का सुधार न होगा।

भारत मे जहाँ-जहाँ रैयतवारी ढंग है, वहाँ तो सरकार से सीधा सम्बन्ध है। पर जहाँ-जहाँ जमींदारी की चाल है वहाँ बीच मे जमींदार के पड जाने से किसान के साथ जमीदारों से रगडा-झगडा लगा रहता है। आपस के झगड़े भी बटवारे हकीयत आदि के लिए लगे रहते है। आये दिन नोन सत्तू लेकर खेती के उपजाऊ कारबार को छोड़कर, अपना लाख हरज करके, अपने भूखे बीवी-बच्चों को बिलखते छोडकर बेचारे किसान को बीसों कोस की दौड लगानी पडती है। वकीलों मुख्तारों के दरवाजों पर ठोकरे खानी पडती हैं। बेचारे को आधे पेट खाने को नहीं मिलता, पर वकीलों मुख्तारों, अहलमदों, पेशकारों और अदालत के अमलों को और अनगिनत ऐसे ही रिश्वतखोरों को, कर्ज लेकर, खनाखन रुपये गिनने पडते हैं। नालिश करने ही रसूम तलबाना वगैरा के लिए खर्च करना पड़ता है, और अन्त मे फल यह होता है, कि हारनेवाले और जीतनेवाले दोनों के दोनों कर्ज से लद जाते हैं, और जायज और नाजायज खर्च दोनों मिलाकर मुकदमा जीतनेवाला भी घाटे मे ही रहता है। पुराने जमाने की पंचायतें इसीलिए उठ गईं कि उनके अधिकार विदेशी

सरकार ने छीन लिये और देहातों के कोने-कोने तक अपना अख्तियार फैलाने के लिए गाँववालों को कचहरी के अर्थात् मूडने वालों के मातहत कर दिया।

इसी तरह मिलों और कारखानों मे जहाँ मजूरों और मालिकों का सम्बन्ध है, वहाँ भी पैसे की माया अजब खेल खिला रही है। पैसा सस्ता हो जाने से सारी चीजे महगी तो हो गई, पर मजूरी उसी हिसाब से नहीं बढी। हम यह बात और जगह दिखा आये है। पैसे की माया के कूटनेवाले बेलट के नीचे दरिद्र मजूर और किसान ककड और पत्थर के टुकडों की तरह पिस गये। और पैसे के पुजारियों की ठडी सडक बन गई।

अभी कुछ ही बरस हुए कि ब्रिटिश सरकार की ओर से पंचायते बनने के लिए कानून बना, परन्तु इन पंचायतों मे वह बात कहाँ है, जो पुरानी पंचायतों मे थी। पंचायतों के प्रकरण मे हम देखेगे, कि पहले कैसी पंचायते होती थीं, आज ब्रिटिश सरकार ने जो पंचायते बनाई है वे कैसी है, और जैसी पंचायतों से हमारे देश का कल्याण हो सकता है, वैसी पंचायते कैसे कायम हो सकती है।

३. आज कैसी दशा है ?

महारानी विक्टोरिया के राज मे भारत की जितनी दुर्दशा हो चुकी थी, वह यूरोप के महासमर तक बराबर बढती ही गई थी, और युद्ध के बाद तो वह इस हद तक पहुँच गई कि, भारत के अत्यन्त शान्त, अत्यन्त सहनशील, और अहिंसा के भक्त, भिक्षा माँगने तक के विनयी भारतवासी अत्याचारों से इतने व्याकुल हो गये कि उन्होंने

स्वतंत्रता का शान्त निरस्त्र युद्ध आरम्भ कर दिया। विदेशी सरकार मुद्दत से इस बात को जानती थी, कि जितने भारी अत्याचारों को भारतवासी चुपचाप सह रहे हैं, उनको ससार की सभ्यता के इतिहास मे किसी भी देश ने बर्दाश्त नहीं किया है। इसी अपडर से सवत् १६१४ के असफल भारतीय युद्ध के कुछ बरसों बाद ही सारे ब्रिटिश भारत के हथियार कानून बनाकर अपने कब्जे मे कर लिये। एक तरह से सारे देश को निहत्था कर दिया, और पासपोर्ट के कानून से भारत के अन्दर बाहर से आना या भारत से बाहर को जाना अपने कब्जे मे कर रक्खा है।

भारतवर्ष एक बहुत भारी किला है, जिसके भीतर अंग्रेज नव्वावों की जागीर है, जहाँ करोड़पती से लेकर भिख मंगे तक उनके कैदी है, इन कैदियों की कई श्रेणियाँ है, जिसमे पहिली श्रणी मे बड़ी-बडी रियासतों के शासक महाराजा, राजा, नव्वाव ताल्लुकेदार और भारी-भारी उपाधियोंवाले जमीदार आदि है। उसके बाद बीच की श्रेणी के लोग हैं। परन्तु इन दोनों की गिनती बहुत थोडी है। सैकडा पीछे निन्यानवे वे दरिद्र कैदी है, जिन्हे इज्जत के लिए मजदूर और किसान कहते है। उन बेचारों को भर पेट मिट्टी मिली हुई वे रोटियाँ और कीचड सी वह दाल और घास का वह झलरा भी भरपेट नसीब नहीं होता, जो इस बडी जागीर के मालिक लोग डाकुओं, चोरों, हत्यारों, लठबाजों और अत्याचारी गुण्डों को इस किले के भीतर की जेलों मे खुशी से देते है। क्या संसार मे ऐसी दुर्दशा किसी सभ्य देश की सुनी गई है ?

इस संसार के अनुपम और विशाल किले के भीतर, इन कैदियों की जो दशा है, अगर उसका पूरा और सच्चा चित्र इन्हीं कैदियों के

सामने रक्खा जाय और उन्हे उनके कष्टों की गम्भीरता का पूरा ज्ञान करा दिया जाय तो शायद उसका फल अत्यन्त भयङ्कर हो, जिसका अनुमान करना वडा कठिन है। भूल और अज्ञान ऐसे मौकों पर वहुत वडी चीज है, उससे लाभ भी है, और हानि भी। भूल और अज्ञान की वेहोशी मे भारतवर्ष को नश्तर पर नश्तर लगते जाते है, खून का चूसा जाना लार्ड सैलिसूवरी की राय के विरुद्ध अन्धाधुन्ध जारी है। इस वेहोशी को कायम रखने के लिए भारत के रहनेवाले सौ मे चौरानवे आदमियों को सव तरह की शिक्षा से विदेशी सरकार ने अलग रक्खा है, और कहा यह जाता है कि आम तालीम पहले कभी दी ही नहीं जाती थी। पहले के किसान खेती के काम मे जितने होशियार थे उसकी गवाही मे पुराने विदेशी लेखक लाख-लाख मुँह से सराहना करते थे। परन्तु गिरमिट की गुलामी ने हमारे यहाँ से कुछ तो खेती की कला मे कुशल मजूरों और किसानों को विदेशों मे भेज दिया, और अधिकाश भारी लगान कर्ज आदि के वोझ से लदकर उजड गये। नये ढंग की मुकदमेवाज़ी मे फँस-फँस कर मर-खप गये, और महामारी हैजा आदि दुर्भिक्ष के रोग उन्हे उठा ले गये। अकाल वारम्वार पडने लगे, और इतनी जल्दी-जल्दी पड़े कि भारतवर्ष मे आज अकाल सदा के लिए ठहर गया है। इन सव वातों ने भारत के किसानों की खेती की कला को चौपट कर दिया। जब वेटे को सिखाने का समय आया, वाप चल वसा। भाई-भाई मे मुकदमेवाजी हुई, वॅटवारे मे चार-चार पक्के वीघे खेत लेकर अलग हो गये। अब हर भाई को अपना-अपना हल-बैल अलग रखना पडा। उधर मुकदमेवाजी ने घर की सम्पत्ति को स्वाहा कर दिया, इधर साहूकार के दिये हुए ऋण ने व्याज और सूद पर

सूद मिलाकर सुरसा की तरह अपना मुंह बढ़ाया, और अन्त मे रहे-सहे वह चार बीघे मय हल-बैल के निगल गया। घर-घर किसानों के यहाँ यही कहानी आज तक दोहराई जा रही है। गाँवों का उजडना आज तक जारी है।

आज भारतवर्ष मे बच्चों की मौते जितनी ज्यादा होती है, ससार मे कहीं नहीं होतीं। दरिद्रता के कारण माँ-बाप न तो बच्चों को दूध दे सकते है और न उनके पालनपोषण की ओर ध्यान देते है। बच्चों के होते समय न तो किसी तरह की सहायता पा सकते है और न सफाई रख सकते है। सफाई और तन्दुरुस्ती भी कुछ अंश तक धन के सहारे ही होती है। इसीलिए दरिद्रता और दुर्भिक्ष ने पहले रास्ता साफ करके रोगों के खेमे खड़े किये, और जब मौत का पडाव बन गया यमराज ने आकर डेरे डाले। आज भारतवासियों की औसत उम्र २८ बरस की हो गई है। जितने आदमी भारतवर्ष में मरते है, उतने ससार मे और कही नहीं मरते। और देशों की हुकूमते अपनी आबादी बढाने की चिन्ता मे रहती हैं, सुख-समृद्धि बढ़ाती रहती है, और इन बातों के लिए जरूरत पडती है, तो खून की नदियाँ बह जाती हैं। यहाँ की हुकूमत भी खून की नदियाँ बहाती है, परन्तु खून होता है भारतवासियों का, और नदियाँ बह कर विलायत के सुख-समृद्धि को सींचती हैं, और बढाती है। इस किले के महा-प्रभुओं की यह मशा नहीं है, कि कैदियों की ठठरियों मे जो खून बने, वह उनके पास रह जाय। मचेस्टरवालों को तो शायद इस बात मे खुशी होगी कि भारत मे मौते ज्यादा होती है, और कफन की बिक्री अच्छी होती है।

हाथ-पैर के मजबूत और खेती के काम मे कुशल किसान जब

देश से एक बार उजड जाते है, तो देश के सम्भालने में युगों का समय लग जाता है। भारतवर्ष की उजडी खेती को फिर पहले की तरह अच्छी दशा मे लाने के लिए अबसे सैंकडों बरस लगेंगे, शर्त यह है कि सुधार के काम मे भारत के लोग प्राणपण से लग जायँ। विदेशी सरकार हमारी उन्नति के लिए अपनेको बहुत चिन्तित प्रकट करती है परन्तु यह दम्भ मात्र है। उसे वस्तुतः चिन्ता यह रहती है कि पैदावार घटकर हमारी आमदनी को न घटा दे।

आज भारतवर्ष मे बेकारी का डंका बज रहा है। यह बात जग-जाहिर है कि खेती मे कहीं भी बारहों मास के लिए किसान या मजूर को काम नहीं मिल सकता। बंगाल के फरीदपुर जिले को भारतवर्ष मे आदर्श समृद्ध जिला बताते हुए जैक नामक एक सिवि-लियन लिखता है कि यहाँ के किसान तीन महीने की कडी मेहनत के बाद नौ महीने बिलकुल बेकारी मे बिताता है। "अगर वह धान के सिवाय पटसन भी उपजाता है तो जुलाई ओर अगस्त के महीनों मे उसे छः हफ्ते का काम और रहता है।"[१] इस तरह कम से कम साढ़े सात महीने बंगाल के किसान बेकार रहते है। श्री कैलव्हर्ट का[२] कहना है कि पंजाब के किसान ३६५ दिनों मे अधिक से अधिक १५० दिन पूरी मेहनत करते है। बाकी सात महीने बेकार रहते है। सयुक्तप्रान्त के लिए श्री इडाई का बयान है कि दो बार बोवाई, दो फसलों की कटाई, बरसात मे कभी-कभी निराई और जाडों मे तीन बार सिंचाई—किसान के लिए कडी मेहनत का काम इतना ही है,—

१ J C Jack The Economic life of a Bengal District, Oxford, 1916, PP 39

२ Calvert's Wealth Welfare of the Punjab PP 245

बाकी साल भर किसान बिलकुल बेकार रहता है। बिहार और उडीसा के लिए श्री टाल्लेट्स और मध्यप्रान्त के लिए श्री राउटन भी ऐसा ही कहते है। श्री गिलबर्ट स्लेटर का कहना है कि मद्रास प्रान्त मे जहाँ एक फसल होती है वहाँ किसान को केवल पाँच महीने काम पडता है और जहाँ दो, फसल होती है वहाँ कुल ८ महीने इस तरह कम से कम चार महीने किसान को दक्षिण देश मे बेकार रहना पडता है।[१] इस तरह भारतवर्ष भर में कम से कम चार महीने से लेकर नौ महीने तक किसान बिलकुल बेकार रहता है। श्री ग्रेग ने भारत के पक्ष को अत्यन्त दबाकर औसत बेकारी कम से कम तीन महीने रक्खी है। अपने ही पक्ष में अटकल की ऐसी कडाई वर्तमान लेखक अन्याय समझता है। यह औसत साढ़े छः महीने होता है परन्तु समीक्षा की कडाई और हिसाब के सुभीते के लिए हम इसे छः महीना रखते है।

भारतवर्ष की खेती पर निर्भर करनेवाली आबादी सैकड़ा पीछे ७५ के लगभग है। इसमे भी जो लोग खेतों पर मेहनत का काम करते है उनकी गिनती लगभग पौने ग्यारह करोड़ है। हम बिना किसी अत्युक्ति के यह कह सकते है कि यही पौने ग्यारह करोड आदमी औसत छः महीने बिलकुल बेकार रहते हैं। कड़े अकाल के दिनों मे विदेशी सरकार सहायता के रूप मे भारत के भुक्खडों से कसकर काम लेती है और दो आने रोज मजूरी देती है। हिसाब के सुभीते के लिए हम पौने ग्यारह करोड की जगह दस ही करोड ले

१ Prof Gilbert Stater Some South Indian Villages-Oxford University Press, London p 16, and Census Reports pp 270, 271 and 274, for Bihar & Orissa, U P, and C P respectively

और केवल एकसो अस्सी दिनों की मजूरी दो आने रोज के हिसाब से रक्खे तो आदमी पीछे साढ़े बाईस रुपये होते है। छः महीने मे दस करोड आदमियों की मजूरी के इस हिसाब से सवा दो अरब रुपये होते है, या सवा करोड रुपया रोजाना होता है इन पौने ग्यारह करोड़ मनुष्य रूपी मशीनों को बेकार रखकर विदेशी सरकार सवा करोड रुपये रोज और सवा दो अरब रुपये सालाने का घाटा कराती है। अगर इसे बेकारी का टैक्स समझा जाय, तो भारतवर्ष को इस भयानक बेकारी के पीछे सिर पीछे सात रुपये के लगभग खोना पडता है। जिस आदमी की आमदनी साल मे छत्तीस रुपये हों, वह क्या सात रुपये या अपनी आमदनी का पचमाश खो देना सह सकेगा ?

सवत् १९७८ की मालगुजारी की रकम जो सरकार ने वसूल की, सवा अरब से कुछ अधिक थी। भारत की सारी आमदनी सवंत् १९८१ की एक अरब अडतीस करोड के ऊपर थी। भारत सरकार का कुल खर्च जो उस साल हुआ, एक अरब साढे बत्तीस करोड से कम था। यही मद्दे विदेशी सरकार की आमदनी और खर्च की मेदों मे सबसे बडी है। बेकारी के कारण भारतवर्ष को जितना हर साल खोना पडता है, वह इनमे बडी-से-बडी मद का पौने दो गुने से ज्यादा है। यह तो किसानों की मजूरी की रकम का हिसाब रक्खा गया, परन्तु यही मजूर लोग काम करके जो माल तैयार करते वह उनकी मजूरी से कई गुना ज्यादा कीमत का होता। तैयार माल की कीमत अगर मजदूरी की दूनी भी लगाई जाय तो पौने सात अरब सालाना का घाटा होता है। हर साल पौने सात अरब का घाटा उठानेवाले किसान अगर कुल आठ ही अरब के कर्जदार हों तो यह कर्जा कुछ ज्यादा नही है। परन्तु जैसे ससार के

किसी सभ्य देश के किसान अपनी जिदगी के आधे दिन न तो इस तरह वेकार खोते है, और न कई करोड की संख्या मे पेट पर पत्थर बाँधकर सो रहते है, और न इस तरह भयानक रूप से ऋणासुर के डाढों के वीच पिस रहे है।

इस भयङ्कर वेकारी का भयानक परिणाम भी देखने मे आरहा है। खाली दिमाग मे शैतान काम-करता है। जिन लोगों को कोई काम नही है वे ज्यादातर हुक्का पीते है और तमाखू फूँक डालते है। तमाखू का जहर हमारे समाज के अंग के रोये-रोये मे फैल गया है। तमाखू आदर-सत्कार की चीज बन गई है। जो तमाखू खून को खराव कर देता है, हृदय और आँतों को बिगाड देता है, आँख की रोशनी को खराब कर देता है, अच्छे खासे मर्द को नामर्द बना देता है, क्षय रोग पैदा करता है, और आदमी के जीवन को घटा देता है, उसी जहर की खेती कमाई करने के लिए नहीं तो अपना नाश करने के लिए किसान करता ही है। परन्तु वह इस तरह पर केवल अपने तन-मन को ही नही खराव करता, वल्कि अपने देश के धन का भी नाश करता है। अगर हम मान ले, कि भारत के वत्तीस करोड प्राणियों मे केवल आठ करोड प्राणी धेले की तमाखू रोज खाते, पीते, सूँघते और फूँकते है तो इस जहर के पीछे सवा छ. लाख रुपये रोज फूँक देते है। साल मे तेईस करोड के लगभग तमाखू मे खर्च कर देते है। ताडी और शराव की आमदनी से सरकार अंधाधुन्ध फायदा उठाती है, वह तो इसका खासा प्रचार करती है। रहे सहे किसान इन जहरों के कारण उजडते जाते है। हमारे देश मे लगभग वारह लाख एकड मे तमाखू की खेती होती है। "शैतान की लकड़ी" के लेखक ने तो अटकल लगाया है, कि पचास करोड रुपये

की तमाखू हमारे देश मे खप जाती है। सन् १९२० ई० मे सरकार को शराब से बीस करोड़ से ज्यादा की आमदनी हुई। अफीम से सन् १९१९-२० मे सरकार को ढाई करोड से अधिक आमदनी हुई। गाँजा, भाँग, चरस, चाय काफी आदि नशे की चीजें भी बेकार किसान को तबाह कर रही है।

यह भुक्खड जिन्हे आधा पेट खाना भी नहीं नसीब होता नशा किसलिए सेवन करते हैं। भूखा आदमी पापी पेट को भरने के लिए लाचार होकर ऐसे काम भी कर डालता है, जिनके करने मे उसे शर्म आती है। जब वह होश मे रहता है तब भीतरवाला ऐसे कामों के करने मे रुकावट डालता है, परन्तु शरीर का बाहरी काम कैसे चले। भुक्खड भीतरवाले की आवाज सुनना नहीं चाहता, इसलिए नशे से अपने को बेहोश कर देता है। भूखे बाल-बच्चे कष्ट से तडफ रहे हैं, कमानेवाला बाप उनके मुँह मे अन्न नहीं रख सकता। जी तोडकर मेहनत करता है, परन्तु मजूरी काफी नहीं मिलती। घोर अकाल के समय मे भी भारत मे काफी अन्न मौजूद रहता है, परन्तु दरिद्र भुक्खड के पास पैसे कहाँ है, कि मोल ले सके। वह बेचारा चिन्ताओं से व्याकुल हो जाता है, तडपते बाल-बच्चे देखे नहीं जा सकते, नशा उसे बेहोश कर देता है। इसीलिए वह किसी न किसी ढंग से अपने को बेहोश कर लेता है। पाप करने के लिए जिस तरह आदमी नशा पीता है, पाप कराने के लिए भी उसी तरह दूसरों को नशा पिलाता है। विदेशी सरकार अपने स्वार्थ-साधन के लिए इस विशाल किले के कैदियों को बेहोश रखने के लिए भाँति-भाँति से नशा पिलाती है। हमारे किसान नशे के पीछे भी बेतरह बरबाद हो रहे है।

गायों से ज्यादा सीधा कोई पशु नहीं है, परन्तु चारा थोडा हो,

और गायें अधिक हों, तो वह भी आपस में लड जायँगी। दरिद्रता की जैसी विकट दशा मे हमारा देश है। वह तो प्रकट ही है खाने को थोडा मिलता है, और बेकारी हद से ज्यादा है, तो उसका नतीजा झगड़ा-फसाद के सिवा कुछ नही हो सकता। यही बात है कि कोई गाँव ऐसा नहीं है। और किसी गाँव मे एक घर भी ऐसा नहीं है, जिसमे मे झगडा-फसाद का बाजार गर्म न हो, और जहाँ आये दिन लोगों मे लट्ठबाजी न होती हो, और फौजदारी या दीवानी तक जाने की नौबत न आती हो। गाँव का पटवारी और चौकीदार और थाने के दारोगा, सिपाही हमेशा इसी फिक्र मे रहते है, कि कोई झगडा खडा हो और उनकी जेबे गर्म हों। झगड़े मे झगडनेवालों का नुकसान ही नुकसान रहता है। और अपनी शान मे ही कोरे रह जाते हैं, और सरकारी लोमडियाँ शिकार का वारा-न्यारा करती है। गाँव-वालों मे कचहरी की दलाली का रोजगार द्रिद्रों की इसी कफ़न खसोटी ने पैदा कर दिया है। जहाँ गाँवों के मुखिया बिना एक कौडी खर्च कराये सच्चा और शुद्ध न्याय कर देता था, वहाँ आज गाँव के दलाल उकसा-उकसा कर चिडिया लडाते है, और मुक्खडों तक को अदालत के दरवाजे पर पहुँचाकर उनका सर्वस्व हर लेने मे कोई कोर कसर नहीं रखते।

४. गाँव का सरकारी प्रबन्ध और लगान-नीति

गाँव के प्रबन्ध के लिए सरकार की ओर से प्रत्येक गाँव में मुख्यतः दो मुलाजिम रहते हैं, एक पटवारी और दूसरा चौकीदार। पटवारी को जमीन की नाप-जोख खेतों का लगान और जमीन के बँटवारे आदि का रेकार्ड रखना पडता है। पटवारी इसलिए रक्खा

जाता है कि उससे गाँव का पूरा हाल हुकूमत को मिले। चौकीदार पुलिस की ओर से रहता है कि किसी तरह का उपद्रव हो तो वह उसकी खबर ऊपरी अफसरों को दे। विदेशी सरकार की वर्तमान लगान-नीति को समझने के लिए 'टाइम्स' की 'इण्डियन इयर बुक' मे जो लेख है उसका सार यह है —[१]

सरकार की जमीन के लगान-सम्बन्धी नीति यही है कि जमीन की मालिक सरकार है और जमीन का लगान एक तरह से उसे मिलने वाला किराया है। सरकार इस बात को अनुभव करती है कि सैद्धान्तिक दृष्टि से इस व्याख्या पर आपत्ति की जा सकती है, पर वह कहती है कि सरकार और किसान के बीच अभी जो सम्बन्ध है उसको स्पष्ट करने के लिए यही शब्द उपयुक्त है। किसान अपनी जमीन की हैसियत के अनुसार सरकार को लगान देता है। लगान पर समय-समय पर पुन विचार करने के लिए जो सरकारी कार्यवाही होती है, उसे सेटलमेण्ट या बन्दोबस्त कहा जाता है। भारत में दो तरह के बन्दोबस्त है, स्थायी और अस्थायी। स्थायी बन्दोबस्त में तो लगान हमेशा के लिए स्थिर कर दिया जाता है, जो किसान से नही बल्कि जमींदार से वसूल किया जाता है। लार्ड कार्नवालिस ने सन् १७९५ में स्थायी बन्दोबस्त कर दिया। अवध और मद्रास के प्रान्तो के कुछ हिस्सो में भी स्थायी लगान निश्चत कर दिया गया था। शेष सारे देश में अस्थायी बन्दोबस्त की प्रथा जारी है। सरकार के सरवे विभाग द्वारा की गई सरवे के आधार पर तीस-तीस वर्ष में प्रत्येक जिले की जमीन की पूरी जाँच होती है। प्रत्येक गाँव की जमीन नापी जाती है। नकशे बनते है। हरेक किसान के खेत को उसमें पृथक-

१ 'विजयी वारडोली' प्रकाशक—सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली।

पृथक बताया जाता है, और उनके अधिकारो का रजिस्टर रक्खा जाता है, जिसमें जमीनो का लेन-देन आदि लिख लिया जाता है। इस पुस्तक को 'वाजिबुल अर्ज' (रेकर्ड ऑव राइट्स) भी कहते है। यह सब जाँचकर उसके अनुसार लगान कायम करने का काम भारत सरकार की सिविल सर्विस के खास तौर पर नियुक्त सभ्यो द्वारा होता है, जिन्हे सेटलमेण्ट अफसर कहा जाता है। मि० स्ट्रेची अपनी पुस्तक (इण्डिया के सशोधित सस्करण १९११) में सेटलमेण्ट अफसर के कार्यों का नीचे लिखे अनुसार दिग्दर्शन कराते है—

सेटलमेण्ट अफसर का काम

"सेटलमेण्ट अफसर को सरकार की माँग निश्चित करनी पडती है, और जमीन सम्बन्धी तमाम अधिकारो, हको और जिम्मेदारियो को रजिस्टर कर लेना पडता है। उसकी सहायता के लिए इस काम के अनुभवी सहायक भी दिये जाते है। जो प्राय. सब देशी ही होते है। एक जिले का इतजाम करना एक बडी जिम्मेदारी का और भारी काम है, जिसमें दिन-रात काम में लगे रहने पर भी बरसो लग जाते थे। खेती-विभाग की स्थापना तथा अन्य सुधारो के कारण अब तो सेटलमेण्ट अफसर का काम बहुत कुछ आसान हो गया है, और वह पहले की अपेक्षा बहुत जल्द समाप्त हो जाता है। जितना भी काम सेटलमेण्ट अफसर द्वारा होता है, उसकी उच्चाधिकारियो द्वारा जॉच होती है, और लगान-निर्णय सम्बन्धी उसकी शिफारिशें तभी अन्तिम समझी जाती है। उसके न्याय-सम्बन्धी निर्णयो की जाँच दीवानी अदालतो में हो सकती है सेटलमेण्ट अफसर का यह कर्तव्य है कि वह जमीन सम्बन्धी उन तमाम अधिकारो और हकूकात को नोट करले, जिनपर आगे चलकर किसान आर सरकार के बीच झगडा होने

की सम्भावना हो। मतलव यह कि वह किसी वात में कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। जो कुछ भी-वात हो, उसीको वह ठीक-ठीक लिख ले।"

दो प्रणालियाँ

अस्थायी वन्दोवस्त में भी लगान दो प्रणालियो से वसूल किया जाता है, एक रैयतवारी और दूसरी जमींदारी। जहांतक लगान से सम्वन्ध है, दोनो में स्थूल रूप से यह भेद है कि रैयतवारी प्रणाली से जिन प्रदेशो में लगान वसूल किया जाता है, वहां काश्तकार सीधा सरकार को लगान देता है, जहाँ जमीदारी प्रणाली है, वहाँ जमींदार अपने इलाके का लगान खुद वसूल करके देता है। अवश्य ही इसमें उसे भी कुछ हिस्सा मिलता है।

रैयतवारी प्रणाली भी दो तरह की होती है। एक तो वही जिसमें किसान खुद सरकार को लगान देता है, और दूसरी वह जिसमें गाँव या जाति का मुखिया गाँव से लगान वसूल करने देता है। सरकार के प्रति जिम्मेदार तो मुखिया ही होता है इस तरह की रीति उत्तर भारत में अधिक है और पहिले प्रकार की रैयतवारी प्रणाली मद्रास, वम्वई, ब्रह्मा और आसाम में प्रचलित है।

पहले की अपेक्षा आजकल की लगान नीति सव प्रकार की जमीनो पर, किसानो के लिए अधिक अनुकूल है। पहले तो आगामी सेटलमेण्ट की अवधि में जमीन की जो औसत कूती जाती थी, उसीपर लगान लगा दिया जाता था। अव तो लगान कूतते समय जमीन की जो उपज प्रत्यक्ष पाई जाती है, उसीके आधार पर लगान का निश्चय किया जाता है। इसलिए किसान अगर अपनी मेहनत से जमीन की पैदावार को कुछ बढ़ा लेता है, तो उसका सारा फायदा उसीको मिलता है। हाँ, नये वन्दोवस्त में इस जमीन को किस वर्ग में रक्खा

जाय, इसपर पुन विचार करके, यदि किसान का लाभ नहर, रेल, जैसी सार्वजनिक लाभ की वस्तु के कारण अथवा बाजार भावो में वृद्धि होने के कारण बढ गया हो, तो उस जमीन को नये वर्ग में डाला जा सकता है। पर सरकार ने इस सिद्धान्त को अब मान लिया है कि किसी खास तरीके पर कोई किसान अगर अपनी जमीन की उपज बढा लेता है, तो उसपर लगान न बढाय जाय। इस विषय में उसने कुछ नियम भी बना लिये है।

लगान की तादाद

भारत में जमीन पर जो लगान लिया जाता है, उसकी एक निश्चित दर नही है। वह स्थायी बन्दोबस्तवाले सूबो में एक प्रकार का है तो अस्थायी बन्दोबस्तवाले सूबो में दूसरे प्रकार का। फिर जमींदारी तथा रैयतवारी प्रदेशो में और भी अलग-अलग। रैयतवारी में भी वह जमीन की किस्म उसके अधिकार आदि के अनुसार न्यूनाधिक है। बगाल में लगभग १६००००००) रुपये जमीदार लोग अपनी रैयत से वसूल करते है, परन्तु चूंकि वहाँ स्थायी बन्दोबस्त हो गया है, इसलिए सरकार उसमें से केवल ४०००००००) रुपये लेती है। अस्थायी बन्दोबस्तवाले प्रदेशो में जमीदारो से, अधिक-से-अधिक लगान का ५० फी सैकडा सरकार वसूल करती है। कही-कहीं तो उसे फी सैकड़ा ३५ बल्कि २५ ही पडता है। पर यह निश्चित है कि वह फी सैकडा ५० से कभी अधिक नहीं होता। रैयतवारी प्रणाली में सरकार का हिस्सा कितना होता है यह ठीक-ठीक बताना जरा कठिन ही है। पर जमीन की पैदावार का अधिक-से-अधिक पाँचवां हिस्सा सरकार का भाग समझ लिया जाय। इससे कम तो कई प्रकार के रेट मिलेगे, पर इससे अधिक तो कही नहीं है।

लगभग सोलह सत्रह वर्ष पहले भारत के कुछ प्रतिष्ठित लोगो ने भारत सरकार को अपने दस्तख़त से इस आशय की एक दरख्वास्त (Memorial) भेजी थी, कि वह जमीन की उपज के पाँचवे हिस्से से ज्यादा लगान कभी न ले। उस समय लार्ड कर्जन वाइसराय थे। उन्होने इस 'मेमोरियल' तथा अन्य 'रिप्रेजेन्टेशेन्स' के जवाव में अपनी लगान-नीति के बचाव में एक प्रस्ताव प्रकाशित किया था। उसमें लिखा था कि "सरकार को जितना लगान लेने को अभी कहा जा रहा है, उससे तो इस समय वह बहुत कम ले रही है। प्रत्येक प्रान्त में औसतन् लगान इससे कम ही है।" यह प्रस्ताव तथा उन प्रान्तीय सरकारो के बयान भी, जिनपर यह कथन आधार रखता था, बाद में पुस्तकाकार छपा दिये गये थे। आज भी सरकार की लगान-नीति के नियमो को प्रकट करनेवाली वही सबसे प्रामाणिक पुस्तक समझी जाती है। उपर्युक्त प्रस्ताव में अनेक सिद्धात निश्चित किये गये हैं, उनमें से मुख्य-मुख्य बाते नीचे दी जाती है —

लगान नीति

"(१) जमीदारी प्रदेशो में सरकार की नीति की कुजी यही है कि धीरे-धीरे लगान कम किया जाय। अधिक-से- अधिक फी सैकडा ५० मालगुजारी ली जाय। इस समय तो यदि गलती होती है, तो लगान कम वसूल किया जाता है, अधिक नहीं।

(२) इन प्रदेशो में जमीदारो के अत्याचारो से काश्तकारो को बचानें के लिए कानून बनाकर या अन्य तरह से हस्तक्षेप करनें में सरकार कभी हिचकिचाती नही।

(३) रैयतवारी प्रदेशो में बन्दोबस्त की मीयाद दिन-व-दिन अधिक बढाने की कोशिश हो रही है। नये बन्दोबस्त के समय जो-जो

कार्यवाहियाँ होती हैं उनको अधिक सरल और सस्ती बनाने की नीति है।

(४) जमीन सम्बन्धी स्थानीय कर बहुत ज्यादा और भारी नहीं है।

(५) जैसा कि कहा जा रहा है, जमीन से इतना कर वसूल नही किया जा रहा है कि उसके कारण लोग दरिद्र और कगाल हो रहे हो। उसी तरह अकालो का कारण भी लगान नीति नही है। तथापि सरकार ने आगे के कार्य की सुविधा के लिए कुछ सिद्धात कायम कर लिये हैं।

(अ) अगर लगान में इजाफा करना है तो वह क्रमश और धीरे-धीरे किया जाय।

(ब) लगान वसूल करने में कुछ उदारता से काम लिया जाय। मौसिम तथा किसानो की दशा को ध्यान में रखते हुए, कभी-कभी लगान वसूल करने की तारीख बढा दी जाय और लगान माफ भी कर दिया जाय।

(इ) स्थानीय कठिनाई के समय लगान बडे पैमाने पर घटाया भी जा सकता है।"

ऊपर की प्रकाशित नीति हाथी के दिखाने के दाँत है। खाने के दाँत और ही है। इस अवतरण से तो ऐसा जान पडता है कि प्रजा का दरिद्र होना, वार-वार अकाल का पड़ना, करोडों की संख्या मे भारतवासियों का मरना सब कुछ भारतवासियों के अपने कसूर से है। लगान और मालगुजारी की सारी शिकायते झूठ हैं। उसका एक अच्छा सा उदाहरण यह है कि गवर्नमेण्ट कहती तो है कि हम मुनाफे का ज्यादा-से-ज्यादा आधा लेते है परन्तु मातार ताल्लुका (गुजरात) मे लगान का ३·२६ गुना कर लगाया गया। दो एक गाँवों मे ५१

प्रतिशत था, परन्तु वाकी सब गाँवों मे ७१ से लेकर ६४ प्रतिशत तक कर लगाया गया था।[१] जो बाते इस सम्बन्ध मे सरकार के ही बताये हुए अकों के आधार पर हम पहले दिखा आये हैं उनके ऊपर इस अवतरण से कैसी सफेदी हो जाती है। ज्यादा टीका-टिप्पणी की जरुरत नहीं है। साराश यह कि इस सफेदी के होते हुए भी अत्यन्त कठोर और किसी प्रकार न मिटनेवाला सत्य यह है कि ससार मे कोई देश न तो भारत-सा दरिद्र है, और न ऐसे भारी भूमि-कर की चक्की मे पिस रहा है। इस भारी कर के बोझ को सहना भी हमारे देश के लिए लाभकर होता, अगर यह धन हमारे देश के भीतर ही खर्च किया जाता। एक तो भारी कर का अत्याचार था ही, दूसरे उससे भी कहीं भारी अत्याचार यह है, कि देश का धन बाहर चला जाता है। इसपर वड़े भोलेपन से यह जवाव दिया जाता है कि आखिर हुकूमत का खर्च और सेना का खर्च कैसे चले ? दरिद्र किसान इस जवाव से कभी सन्तुष्ट नही हो सकता। "अगर आप किफायत से खर्च नहीं कर सकते, तो आपमे बन्दोबस्त की योग्यता नहीं है। आपने हमसे कव पूछा कि हम इतना खर्चीला बन्दोबस्त करे या न करें। हमे आपकी सेवा नहीं चाहिए। आपके लुटाऊ कलेक्टर और कमिश्नर नहीं चाहिए। हमे तो चाहिए रोटियाँ, जिनके लिए हम तरस रहे है।"

१ "An Economic Survey" Young India, 1929, page 389 para 6

: १० :

किसानों की बरबादी

१. क्या थे क्या हो गये ?

हम जब अपने पहले की सुख-समृद्धि के इतिहास से आज की अपनी दशा का मुकाबला करते है, तो चकरा जाते हैं कि हम क्या थे आज क्या हो गए। हम सुख से रहते आए। मेहमानों से जी खोलकर मिलते रहे। मेहमान आते थे तो हम अपना परम सौभाग्य मानते थे। उनके साथ हमारे घरों मे कल्याण आता था। लक्ष्मी आती थी। परन्तु जबसे ये विदेशी व्यापारी मेहमान आए तभी से हमारा दुर्भाग्य शुरू हो गया। पहले भी विदेशियों से सम्बन्ध था। परन्तु वे सचमुच व्यापारी थे। लुटेरे न थे। ये कैसे मेहमान आये जिन-की निगाह सदा हमारे माल पर रहीं और आज भी, जब हम बरबाद हो गए है, उनकी लूट-खसोट घटने का नाम नहीं लेती।

२. लुटेरों की मेहमानी

जिस समय विदेशियों से हमारा अधिक सम्बन्ध न था उस समय भारतवासियों की खत्ती बखारियों मे अन्न समाता न था, पशु यथेष्ठ थे, दूध घी अच्छी तरह मिलता था, लोगों के शरीर पर मजबूत कपडे भी अच्छी तरह दिखाई देते थे और महगी का तो कही नाम भी न था। उन दिनों हृदय मे कंजूसी को जगह न मिलती थी। कोई मेहमान आ जाता था तो वह भार नहीं होता था। उसके आने

से किसान फूले नही समाता था। देशवासियों मे सादगी, सन्तोष तथा आजादी दिखाई देती थी। किन्तु जबसे हम शिकारियों के जाल मे उलझ गए, तबसे हमारा धन और माल जहाजों मे लद्-लदकर यहाँ से जाने लगा। पहले यहाँ की अनमोल कारीगरी की चीजे ही जाती थीं, परन्तु अब कच्चा माल ढो-ढो कर जाने लगा। आज तो विदेशियों का वस चले तो वे भारत भूमि की आँते तक निकाल-कर रेल मे लादकर ले जायॅ। और यही हो भी रहा है। सोना, चाँदी और मेगनीज आदि धातुओं की खानों से जो माल निकलता है, वह कहां जाता है ? अन्न, रुई, तेलहन यहाँ तक कि हड्डियाँ तक बिनवा-बिनवा कर कहाँ जाती है ? साथ ही मजेदार वात यह है, कि हमें बतलाया जाता है, कि अग्रेजों को यह सब लूटने का परिश्रम हमारे ही लाभ के लिए करना पडता है। पाँच करोड की रुई जाती है और साठ करोड का कपडा आता है। बीच के पचपन करोड कहाँ चले जाते हैं ? इस लूट से तो नादिरशाह की लूट अच्छी थी। उस लूट को हम लूट तो कह सकते है। यह कप्पडशाह की लूट तो लूट भी नहीं कहलाती। वह तो यही कहता है कि भारतवासियों के शरीर की शोभा बढाने के लिए उन्हे सस्ते कपड़े देने और उन्हे भाँति-भाँति के लाभ पहुंचाने के लिए ही वह यहाँ आया है। यही तो उसका जादू है। और सबसे बढकर अचरज की बात तो यह है कि भारत के किसान उसकी लूट मे शामिल होते है और उसमे अपना लाभ समझते है।

३. उनका जादू

विदेशियों ने कहा कि तुम्हे खेती करना नही आता। तुम्हारे हल और औजार बहुत पुराने है, तुम्हारा खेती का ढंग पुराना है—जंगली

है। अब तुम्हे विलायती ढग के लोहे के हल काम मे लाना चाहिए। हमारा कृषि विभाग उसका प्रयोग करके दिखावेगा। हमारे अनेक सीधे-सादे किसान इस भ्रम मे पडकर, कि साहब जो कहते है ठीक होगा, उनके कहे पर चले, परन्तु नतीजा उलटा ही हुआ। साहब कहते है कि किसानों के खेत विस्तार मे बहुत छोटे-छोटे है। इस तरह के खेतों मे वैज्ञानिक ढग से खेती नहीं हो सकती। भाफ के इंजन से चलनेवाले औजार इनमे काम नहीं दे सकते। इसलिए छोटे-छोटे किसानों को उजाड कर जमीन के बहुत बड़े टुकडों मे खेती करनी चाहिए। ठीक है, घर-घर मे छोटे-छोटे चूल्हे रखने मे हरेक घर की स्त्रियों को रोटी-पानी मे फंसना पडता है, और उनका बहुत समय नष्ट होता है। यदि इनके स्थान मे बड़े-बड़े भठियारखाने खोल दिये जायं, तो अनेक स्त्रियों को फुरसत मिल जाय, उनका समय बचे और आर्थिक दृष्टि से भी लाभ हो। अक रखकर भी यह लाभ सिद्ध किया जा सकता है, इसलिए छोटे-छोटे चूल्हों को नष्ट करके रोटी-पानी के झंझट से भी पीछा क्यों न छुड़ा लिया जाय? भारतवासी जंगली है। उनका उत्तराधिकार का कानून भी पुराने ढग का है। उसके कारण जमीन छोटे-छोटे टुकडों मे बटती जाती है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक नया कानून बनाकर छोटे-छोटे किसानों से जमीन छीनली जानी चाहिए, और किसी बड़े ज़मींदार को—चाहे वह गोरा हो या काला—दे देनी चाहिए। इससे पैदावार बढ़ेगी, वैज्ञानिक ढंग से खेती हो सकेगी और आधुनिक औज़ार काम मे लाये जा सकेंगे। औज़ार सब विलायत से आयेंगे, टूटे फूटेंगे तो उनके कल पुर्जे भी वहीं से मंगाने पड़ेगे। वैज्ञानिक खाद भी काम मे लाई जाय ताकि उसे बनाने और बेचनेवाली

कम्पनियों को लाभ हो। उपाय तो बहुत बढ़िया है। इसकी बदौलत छोटे-छोटे किसान ज़मीन छोड़कर मजे के मजूर बन सकते हैं। यह सब अर्थशास्त्र है। न गृहशास्त्र न नीतिशास्त्र, केवल अर्थशास्त्र—अर्थशास्त्र !!!

अर्थशास्त्र की दृष्टि से पशुपालन भी हानिकर है, इसलिए पशुओं को बेच देना चाहिए। कोई गाहक न मिले तो उन्हें कसाईखाने मे भेज दीजिए। वहाँ उनकी हड्डियाँ और चमड़े आदि की अच्छी कीमत खड़ी हो जायगी। इसके बाद ले आइए पम्प और तेल के इञ्जन और छोडिये पुर चलाकर खेत सींचने का झंझट। कम्पनी-वाले खुद आकर इञ्जन चालू कर जायँगे इसका वे मेहनताना भी आपसे न माँगगे। आपको केवल किरासिन तेल लाना होगा, और कुछ नही। बस फिर जितनी जी चाहे उतनी सिचाई कीजिए। किसान इस तरह की बातें सुनकर अचम्भे मे पड़ जाता है, और इञ्जन लाने का विचार करने लगता है। ऐसा होना स्वाभाविक ही है। वह सोचता है कि जो सबकी गति होगी, वही मेरी भी होगी।

४. हर बात में उन्होंने अपना फायदा सोचा

पहले खेत मे जो पैदावार होती उसीमे सरकार का भाग रहता था। यदि फसल पैदा होती थी, तो सरकार लगान लेती थी और फसल न होती थी तो न लेती थी। बाद को इसमे झंझट दिखाई दी, इसलिए नगद मालगुजारी या लगान लेना स्थिर हुआ। किस जमीन का कितना लगान होना चाहिए यह निश्चित करना सरकार का काम है, इसमे किसान की सम्मति लेना जरूरी न रहा। वह इन बातों को क्या जाने ? प्राचीन काल मे भारत के राजा और बादशाह पैदावार

का छठा भाग बतौर मालगुजारी के लेते थे, परन्तु अँग्रेज बहादुर ने इसे खूब बढ़ाया। किसान की मजूरी और लागत निकल आये तो गनीमत, बाकी सभी मालगुजारी में चला जाता है। स्वर्गीय दत्त महोदय ने सरकारी प्रमाणों से ही साबित कर दिया है, कि सरकार फी सैंकडा पचास से भी अधिक मालगुजारी लेती है और दिन पर दिन इसमे भी इजाफा होता जा रहा है। किसान के सिर का बोझ इस तरह धीरे-धीरे बढ़ता ही जाता है। मालगुजारी तै करनेवाले अफसरों के खिलाफ कोई शिकायत सरकार मे सुनी ही नहीं जाती। किसान अगर खेत का सुधार कर खेती की बढ़ती करता है, कुआँ खुदवाता है और पैदावार बढाता है, तो उसके कारण भी मालगुजारी बढ जाती है। ऐसी दशा मे किसान को खेती की दशा सुधारने की इच्छा कैसे हो सकती है? इस तरीके के कारण किसान की माली हालत दिन-पर-दिन खराब होती गई, और कोई सहारा न रहने के कारण अकाल मे डटे रहने की ताकत घट गई। इसका नतीजा यह हुआ कि वह कर्जदार होगया। जिसकी प्रतिष्ठा जितनी कम और अवस्था जितनी लाचार होती है, उसको ब्याज भी उतना ही अधिक देना पडता है। इस कारण से किसानों की देनदारी धीरे-धीरे बढ़ती ही गई। इस समय उनके सिरपर कर्ज का बोझ इतना ज्यादा होगया है, कि वे उससे दबे जा रहे है और उनके छुटकारे का प्रश्न बहुत ही कठिन बन गया है।

किसानों को इस देनदारी से छुटकारा दिलाने के लिए दक्षिण भारत मे एक कानून बनाया गया है, उसका नाम है "दक्षिण के किसानों को आराम पहुंचानेवाला कानून" इस कानून के मुताबिक पहले महाराष्ट्र मे और फिर गुजरात मे काम किया गया। इस

कानून से सरकार की लगान नीति की सख्ती मे किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। इसका नतीजा सिर्फ यही हुआ है, कि सङ्कट के समय किसानों को उधार देनेवाला भी अव कोई नही रहा। सरकार खुद किसानों को रुपया उधार देती है और तकावियाँ बाँटती है। इसकी किस्तें, नियम और ब्याज आदि बाते इस तरह गढी गई है, कि किसान पानी से निकलकर आग मे जा गिरा है। किसान को अपने पिता का प्रेत कर्म करना हो या कन्या का विवाह करना हो तो उसे तकावी नहीं मिल सकती। वह सिर्फ खेती के काम के लिए ही मिल सकती है। उसे वसूल करनेवाले भी माल मुहकमे के अफसर ही होते हैं। पत्र-पुष्प से उनकी भली भाँति पूजा करनी होती है, एक ओर तकावी लेते समय किसान लूटा जाता है ओर दूसरी ओर उसे चुकाते समय कठिन से कठिन कायदों की पावन्दी करनी पडती है। इससे किसान निराश हो जाता है। एक ओर महाजन ने रुपया देना वन्द कर दिया, दूसरी ओर सरकार सख्ती करने लगी। किसान को किसीका भी सहारा न रहा। उसे खेती या गृहस्ती के खर्चे के लिए वक्त वेवक्त कुछ-न-कुछ रुपयों की जरूरत पडती ही है, लेकिन अव वे कहाँ से लाये? किसानों की इस वेबसी से एक तीसरे ही दल ने लाभ उठाया। यह दल काबुली पठानों का था। हाथ मे छुरा लेकर यह दल कार्यक्षेत्र मे उतरा। काबुलियों के ब्याज ने महाजन और सरकार को भी भुला दिया। रुपये दो या हड्डियाँ तुडवाओ। यही काबुलियों का नियम था। महाजन किसान को एकदम चूसता न था। वह आँख दिखाता था, नरम-गरम होता था, किन्तु किसान को ज़िन्दा रहने देता था। एक तो पुश्त दर पुश्त से लेनदेन, दूसरे हिन्दू समाज, इसलिए वह

अधिक सख्ती कर भी न सकता था। किन्तु काबुली को क्या? महाजनों का लेन-देन बन्द होने पर इस समय देहात मे काबुली जो लूट मचा रहे हैं, उससे किसानों की हालत का पता अच्छी तरह चल सकता है। किसान खेत छोडकर कहाँ जाय और क्या करे? किसानों को आराम पहुँचानेवाले सरकारी कानून ने ही यह हालत पैदा की है। डाक्टर भंडारकर जैसे सरकार के खैरख्वाह ने भी एक बार व्यवस्थापिका परिपद् मे काबुलियों की इन ज्यादियों का वर्णन कर, प्रजा के प्रति सरकार के उपेक्षा भाव की निन्दा की थी। एक ओर मालगुजारी का बोझ दिन-पर-दिन बढता जा रहा है, क्योंकि बिना उसके गोरे हाकिमों की बडी-बडी तनख्वाहे और भारतवासियों को कब्जे मे रखने और विदेशों पर चढाई करने के लिए रक्खी हुई फौज का खर्च चलाना कठिन है और दूसरी ओर किसानों की देनदारी और लाभदायक कहे जानेवाले कानूनों का भयङ्कर परिणाम दोनों के बीच मे बेचारे किसान पिसे जा रहे है।

किसान को रुपयों की जरूरत तो पडती ही है। इसके लिए उसे ऐसी चीजे बोनी पडती हैं जिससे रुपये मिल सके। बच्चों के लिए अन्न और पशुओं को चारा चाहिए। किंतु सरकार और काबुलियो के आगे वह इन चीजों का विचार तक नहीं करता। बच्चे और पशुओं का चाहे जो हो, सरकार का लगान और काबुली का पावना तो चुकाना ही होगा। इस प्रकार लगान देने के लिए, काबुली को खुश रखने के लिए, महाजन से कुछ अन्न पानी लिया हो तो उससे उऋण होने के लिए, किसान को अपनी पैदावार—समूचे वर्प के कठिन परिश्रम का फल बेच देना पडता है। न वह अनुकूल भाव की राह देख सकता है, न अनुकूल समय की। फल यह होता है कि उसे

अपने माल का पूरा दाम भी नहीं मिलता। मजबूर होकर सब मिट्टी के मोल बेच देना पडता है। चैत मे जिस समय गेहूँ पैदा होता है, उस समय उसे चार रुपये मन बेच देना पडता है, किन्तु बरसात मे खाने या कातिक मे बोने के लिए जब उसे उसकी जरूरत पडती है, तब वही छः रुपये मन खरीदना पडता है। नकद रुपये तो उसके पास रहते ही नहीं, इसलिए उसे यह भी उधार लेना पडता है। इन रुपयों का ब्याज जोडने पर उसे पहले के भाव से दूना या इससे भी अधिक देना पडता है। इस तरह माली मुसीबत के कारण किसान को दूनी चोट सहनी पडती है। जिस समय किसानों को सरकारी किस्त चुकानी होती है, उस समय किसी हाट मे जाकर देखने से, किसान किस प्रकार अपना अन्न मिट्टी मोल बेचते है, इसका पता चल सकता है। सरकार की किस्त महाजन या काबुली से भी भयङ्कर होती है। काबुली तो अन्त मे मनुष्य ठहरा, किस्त मनुष्य थोड़े ही है जो मान जायगी। किस्त माने मशीन। मशीन चलाने के लिए आकाश ढूंढ कर या पाताल फोडकर कहीं न कहीं से तेल लाना ही होता है। किस्त की बदौलत किसान के यहाँ साक्षात् यमराज आ पहुचते है। जिस समय उनका आगमन होता है उस समय किसान को अपनी प्यारी-से-प्यारी वस्तु बेच देनी पडती है। पशुओं का चारा बेच देना पडता है, जी जिलाने के लिये रक्खा हुआ अन्न तक बेच देना पडता है और वह भी मिट्टी के मोल। बाजार भाव तो व्यापार के अनुसार घटता बढता है। उससे फायदा उठाने के लिए वक्त का इन्तजार करना पडता है, किन्तु किस्त के समय मे घटा-बढी न हो सकने के कारण किसान को तत्काल अपनी चीजे बेच देनी पड़ती है। किसान को इन सब दुःखों से बचाने के लिए सरकार ने सहयोग समितियों की

स्थापना की। जिन किसानों की पंचायतें तोडकर उनका आपसी मेल-जोल नष्ट किया गया था, उन्हींमे इन समितियों द्वारा आपसी मेल-जोल की कोशिश की गई। लेकिन इस उपाय का परिणाम भी शून्य मे ही आया। जिन गाँवों मे ऐसी समितियाँ कायम की गई, उन गाँवों को इनसे लाभ होना तो दूर रहा, उलटे किसान इन नई किस्म के सरकारी अफ़सरों के नीचे इस तरह दब गये कि जिन गाँवों मे ये समितियाँ अभी तक कायम है उनमे कोई दूसरा आन्दोलन चल ही नहीं सकता। अनुभव ने बतलाया है कि जिन गाँवों मे सहयोग समितियाँ है उन गाँवों मे खादी के आन्दोलन की जड नहीं जमने पाती। जम भी कैसे सकती है? किसान उस सहयोग समिति के नीचे कुछ-न-कुछ दबे ही रहते है। ऊपर से सुपरवाईजर और आर्गनाइजर उन्हे लाल पीली आँखे दिखलाया करते है। ऐसी अवस्था मे बेचारा किसान क्या कर सकता है? सहयोग समितियों से क्या-क्या लाभ हुए इसका वर्णन हम यहाँ करना नहीं चाहते। इस सम्बन्ध में सिर्फ इतना ही कहना काफी है कि उनका ब्याज, उनमे होनेवाली धूर्तता, उनकी किस्ते, उनकी सख्त निगरानी और उनकी गोलमाल से जहाँ-जहाँ वे कायम है वहाँ लोग बेतरह ऊब उठे है।

५. मालगुजारी की तहसील

सरकार ने कानून बनाकर, सरकारी मालगुजारी साल मे दो किस्तों मे लेना तय किया है, किन्तु देहात मे मालगुजारी वसूल करनेवाले हाकिम या पटवारी उसे एक ही बार मे—एक मुश्त, वसूल करने की कोशिश करते है। वे किसान पर निजी तौर से दबाव डालकर उसे समझाते हैं कि, 'भविष्य मे शायद रुपये रहे न

रहे, सरकार का लगान तो आखिर देना ही होगा, सब एकसाथ ही क्यों नही दे देते ?" सरकार ने कानून बनाया कि फ़सल चार आने से कम हो तो लगान उस साल मुलतवी रखकर अगले साल लिया जाय। किन्तु पटवारी और सर्कल इन्स्पेक्टरों की यह हालत है कि पैदावार कम होने पर भी वे अधिक ही लिख मारते है। इस सम्बन्ध मे न तो वे किसानों से पूछते है न कोई जाँच ही करते है। कानून आल्मारियों की किताबों मे ही रह जाते है। ऊँचे अधिकारियों को छोटे कर्मचारियों की बात माननी ही पडती है। न माने तो देहात मे सरकार की प्रतिष्टा नष्ट हो जाय। गुजरात के खेडा जिले मे यही हुआ था। पहले सरकार को छोटे कर्मचारियों की बात रखनी पडी थी, किन्तु बाद को आन्दोलन के कारण उसे अपना विचार बदलना पडा।

छोटे कर्मचारी अक्सर रिश्वतखोर होते है। किसान को जब कोई काम पडता है तो उनकी पूजा अवश्य करनी पडती है। सरकारी कानून है किसी मिसिल की नकल जरूरी हो, तो एक आना देने से मिल सकती है, किन्तु चाहे जिस किसान से पूछिये, कि एक आना देनेपर क्या कभी समय पर काम हुआ है ? नाम बदलवाना हो, तो पहले पटवारी साहब को एक रुपया दक्षिणा देनी होगी। पटवारी की लडकी या तहसीलदार के लडके का ब्याह होने पर किसान क्या-क्या सौगात नजराना देते है, सो सुनिए। सरकारी नौकरों को तरकारी, दूध और घी मे कितने पैसे खर्च करने पडते है ? उनके सफर के लिए सवारी का इन्तजाम कौन करता है ? घोड़े की लगाम टूट गई तो मोची हाजिर है, तम्बू के लिए खूँटों की जरूरत हुई तो बढ़ई बसूला लिये खडा है, घोड़े के लिए घास की जरूरत हुई तो किसान

की लांक (दानों समेत अन्न के पौधों के गट्ठे) मौजूद है, शीतल जल के लिए घडा या सुराही चाहिए तो कुम्हार लिये खडा है, हजामत या चप्पी करवानी हुई तो नाई हाजिर है, किसी दूसरे गांव को चिट्ठी या खबर भेजना है तो बेगार के लिए चमार या भगी मौजूद है, दूध की जरूरत हुई तो अहीर खडा है। घी दूसरों को रुपये सेर नहीं मिलता, किन्तु हुजूर को रुपये का दो सेर देना होगा, क्योंकि उनसे किसी दिन काम पड सकता है। इस तरह छोटे-बड़े सभी हुजूर मौज करते है, तब मुखिया और पटवारी ही क्यों वाकी रह जाय? मुखिया का खेत निराना है, सभी मजूरी पेशा लोगों को दो-दो दिन मुफ्त काम करने का हुक्म निकाल दिया गया। खेत जोतना है तो किसी के हल-बैल पकड मंगाये गये, काटने का वक्त हुआ तो मजूर बेगार मे पकड लाये गये, और घोडी के लिए चारे की आवश्यकता हुई तो किसी कुरमी काछी को रोज हरियाली का गट्ठर पहुचाने की फरमाइश की गई। यह एक प्रकार का कर है। जिसतरह देसी रियासते सरकार को कर देती है, उसी तरह किसानों से यह कर लिया जाता है। सरकार उन्हे जमीन पर रहने देती है, यह क्या कोई मामूली मेहरबानी है? सरकार की यह हुकूमत की रीति बड़े से लेकर छोटे कर्मचारियों तक छन-छन कर चलती है। हरेक काम के लिए बड़े से लेकर छोटे कर्मचारी तक का अहसान सिरपर चढ़ाना पडता है। इसका देशवासियों की माली हालत के सिवा चाल-चलन पर भी असर पडता है। जब इग्लैण्ड और भारत के आपसी सम्बन्धों का इतिहास लिखा जायगा, तब, इंग्लैण्ड क्या-क्या लूट ले गया, यह लिखा जायगा। किन्तु जो गांव के गांव नष्ट होगये है, लोगों की नीति छिन्न-भिन्न होगई है, जनता भी डरपोक बन गई

है, लोग झूठ बोलना सीख गये है, लोग मारतेखाँ को पूजने लग गये है, यह थोड़े ही लिखा जायगा। देश के ही मनुष्य शिक्षा प्राप्त कर कुल्हाडी के बेंट की तरह देशवासियों पर जो चोटें कर रहे हैं, वह थोड़े ही लिखा जायगा। इस देश की सभ्यता का नाश कर अंग्रेजी शासन-पद्धति ने जो बुराइयाँ की हैं, और देशवासियों को जिसतरह लोभी, डरपोक और नालायक बना दिया है, उससे लूट और कत्ल लाख दरजे अच्छे थे। तैमूर की लूट, नादिरशाह की कत्ल और अहमदशाह अब्दाली की चढाई सभी इससे अच्छे थे।

६. पशुओं की जायदाद छिन गई

अब हम लोग जरा पशुओं पर दृष्टिपात करें। मनुष्य तो प्रलोभन मे पड गये किन्तु पशुओं ने कौनसा अपराध किया था? जिस प्रकार गेहूँ के साथ घुन पिस जाता है और सूखी चीजों के साथ हरी चीजें भी जल जाती हैं, वही अवस्था इनकी भी हुई। पशुओं को चरने के लिए भारत मे गोचरों की कमी नहीं थी, किन्तु ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के किरानी और डिरेक्टरों से लेकर आजतक जहाँ रुपयों के लिए हाय-हत्या मची हुई है उसपर भूखे राज्य के पास गोचर कैसे रह सकते हैं? गोचरों की जमीन लाट की लाट बेच दी गई, नीलाम करदी गई। धनवान व्यापारी और जमींदार पतंग की तरह इन लाटों पर टूट पड़े। बेचनेवाले साहबों की मेमों को सोने की जजीरें पहनाई गईं और लाल हाथ किये गये। इन लाटों की जोताई साधारण बैलों से कैसे हो सकती थी? हजारों बीघा जमीन कितने दिनों मे जोती जाती? घास की जडें भी खूब गहराई तक जमी हुई थीं। बस विलायत से स्टीम प्लाउ—इञ्जन से चलनेवाला

हल—मंगाया और बात की बात मे जमीन जोतकर बराबर करदी गई। जिन लोगों के पशु इन जमीनों मे चरकर आशीर्वाद दिया करते थे, जिन गाँवों के निकट ये गोचर थे, और दूर-दूर के अहीर गडरिये जो इन गोचरों से लाभ उठाकर भारतभूमि को सुजला सफला कहते थे, वे इस पैशाचिक हल को देखकर दंग रह गये। इस हल को चलाने के लिए एक गोरा साहब आया था। उसके साथ मे अनेक काले लोग भी थे, किन्तु वे सब साहब की टोपी पहनकर नकली साहब बन गये थे। इन सबको देखकर देहातियों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

खैर किसी तरह ये लाट जोते गये, घास की जडें उखाड फेंकी गईं और उनके स्थान मे कपास बोई गई। इस कपास के बोनेवाले मालामाल होगये और सरकार को भी काफी आमदनी हुई। पहले तो नीलाम मे लाभ हुआ, फिर मालगुजारी मे बढ़ती हुई। किन्तु दूसरी ओर लाटवाले और आसपास के ग्रामवासियों मे झगडा होने लगा। जो लोग वहाँ पशु चराने जाते, उन्हींसे लडाई होती। लाट-वालों ने देहातियों को दबाने के लिए पठानों को नौकर रक्खा। इसके फलस्वरूप वहाँ दंगे और हत्याये हुईं। किन्तु इनका कौन हिसाब? हत्याओं की ओर कौन देखता है? जिन लोगों के पुश्तैनी हक छिन गये, उनमे से कुछ लोगों ने लूटमार का पेशा इख्तियार करके मौके-बे-मौके लाटवालों को तंग करना शुरू किया। जिन साहबों ने यह आग लगाई थी, वे शाही महलों मे बैठे हुए चैन की बंशी बजा रहे थे और देशवासियों की इस प्रकार दुर्गति हो रही थी। यह तो हुई मनुष्यों की बात। वे पशु कहाँ गये, जिनके लिए प्रकृति ने यह भोजन सुरक्षित रक्खा था? चारे की कमी के कारण किसान ने

उनका ज्यादा तादाद मे रखना उचित न समझा। उसे मजबूर होकर दो बैल और एक आध भैंस रखनी पडी। शेष सभी पशु उसने बेच दिये। दुबले पशु कसाईखाने और अच्छे पशु ब्रेजिल चले गये। किसान को रुपये काफी मिले, पर वे दो ही दिन मे काफूर होगये। इस प्रकार पशु भी चले गये और रुपये भी न रहे। रह गये केवल एक दूसरे को आँखें दिखाते हुए ग्रामीण और लाटवाले। इस योजना का सुन्दर नाम रक्खा गया—डेवेलपमेण्ट स्कीम अर्थात् खेती की उन्नति करनेवाली योजना। इसने सारे गोचरों और पडी हुई जमीन को खेत बना डाला। इस अमरीकन तरीके को प्रचलित करने के लिए सरकार को धन्यवाद दिया गया। भारत के पशु मर मिटे, किन्तु इस योजना से भारतमंत्री को आनन्द हुआ। भारत की उन्नति हुई। यह सब आजकल के अर्थशास्त्रों के फेर मे पडकर हुआ।

सरकार पाँच-पाँच वर्ष मे पशुओं की गिनती के अंक प्रकाशित करती है। उन्हे देखने से इस बात का पता चल सकता है, कि भारत मे पशुओं की सख्या दिनों दिन किस प्रकार घटती जा रही है। किसी किसान के यहाँ बैल ही नहीं होते। वह माँग-जाँच कर या भाड़े पर लाकर काम चलाता है। किसीके पास एक ही बैल होता है वह दूसरे को साझीदार बनाकर काम चलाता है, किन्तु इससे खेत बोने का काम ठीक समय पर नहीं हो पाता। किसी किसान के यहाँ बैलों की अच्छी जोडी होती है, तो उसका मूल्य दो ढाई सौ रुपये आंका जाता है। सब किसान ढाई सौ की जोडी कैसे ले सकते हैं? बैलों की अच्छी जोडी रखना आजकल हाथी बाँधना समझा जाता है। अच्छी नस्ल के पशु घटते जा रहे हैं। कुछ दिनों मे उनका पता भी न रहेगा। जिस प्रकार कई किस्म के भारतीय घोडों का निशान

संसार से मिट गया है, उसी तरह, यह हुकूमत चलती रही तो, बैलों की भी अच्छी नस्लें लोप हो जायॅगी। केवल गुजरात का उदाहरण लीजिए। वहाॅ अब सिन्धी लोग बैल वेचने जाते है। जो गुजरात किसी समय एक उद्यान रूप था, जिस गुजरात मे गोचरों की कोई कमी न थी, जिस गुजरात के बैल बढिया माने जाते थे, उसी गुजरात के लोगों को अब सिन्धियों से बैल खरीदने पडते है।

आजकल एक गाय रखना भी भारी पडता है। पहले किसी ब्राह्मण का घर बिना गाय का न रहता था, किन्तु अब महॅगे दाम की घास और दाना खिलाकर गाय रखना नही बन सकता। पशुओं को खिलाने मे भी अर्थशास्त्र देखा जाता है। अहीर गाये पालकर क्या करे? उन्हे क्या खिलाऍ? उन्हे वेच देने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं दिखाई देता। बेचने से अच्छी रकम मिलती है। मास का भी मूल्य मिलता है, चमड़े का भी मूल्य मिलता है, हड्डियों का भी मूल्य मिलता है, खुर और सींगों का भी मूल्य मिलता है। पशु को जिंदा रखने मे जितना लाभ है, उसको मार डालने मे उससे कहीं अधिक लाभ है। इस प्रकार घर मे अर्थशास्त्र दाखिल हुआ। सरकार ने इसके लिए कसाई खाने खुलवा दिये। अकेले बम्बई का ही उदाहरण लीजिए। कोई कह सकता है, कि वहाँ कसाईखाने मे प्रति वर्ष कितने पशुओं की हत्या की जाती है? सरकार की ओर से इसका विवरण प्रकाशित होता है। पाठक उसे देख सकते है। बतलाइए, अब घी और दूध कहाँ से लाया जाय? कैसे खाया जाय? खाइए घी के स्थान मे वेजीटेबिल प्रोडक्ट (वनस्पति घी) और दूध के स्थान मे नेल्सन आदि का जमाया हुआ दूध। भारत के बच्चे बिना दूध के तडप रहे है, किन्तु किससे शिकायत की जाय? गोचरों को नीलाम

करने का साहबों से या उन्हे खेत बनाकर मालदार बननेवाले देश वासियों से ? गोचरों की कौन कहे, गुजरात के मातर तालुके मे तुलसी के वन थे। वहाँ की तुलसी प्रति वर्ष गोकुल-मथरा और काशी के देवताओं पर चढ़ाई जाती थी, किन्तु वे गोड-गोड कर बराबर कर दिये गये और तुलसी के स्थान मे वहाँ कपास के पौधे लहराने लगे। यह कपास मन्चेस्टर और टोकियो गई। वहाँ से उसके रुपये आये। उन रुपयों से हमने विलायती कपडा खरीदा और जो बचा उससे साबुन, तेल, फुलेल और मौज शौक की हजारों चीजे लीं। दूध की क्या आवश्यकता है ? भारत के सुकुमार तपडते है तो उन्हे तडपने दीजिए।

७. जंगल भी लुट गये

मनुष्य और पशुओं की अवस्था देख चुके। चलो, अब जरा वृक्षों के पास चले। बताओ भाई तुम्हारे क्या हाल है ? वृक्ष माने प्रकृति का बनाया हुआ बॅगला। उसमे नजाने कितने जीव जन्तु विश्राम करते हैं। किन्तु जरा सोचिए कि प्रतिवर्ष इस प्रकार के कितने वृक्ष कटते है ? माना कि मिल और जिनों के लिए लकडी की आवश्यकता पडती है, किन्तु क्या इनके लिए नए वृक्ष भी रोपे जाते हैं ? अॅग्रेजी मे एक कहावत है कि "वृक्ष रोपने से स्वर्ग मिलता है।" जरा इस सूत्र के अर्थ पर विचार कीजिए। बड़े शहरों मे रहनेवाले लोग देहातों से लकडियाँ और कोयला माँगते है। खैर कोई हर्ज नहीं, किन्तु क्या शहरातियों को कभी यह बात भी सूझती है कि वर्ष मे कम से कम एक वृक्ष तो कही लगवा दे ? सम्भव है कि सूझती हो पर वे वृक्ष कहाँ लगाये ? तिम-जिले पर, जहाँ रहते है वहाँ ? उनके पास तो बिस्वा भर भी जमीन

नहीं है। वे तो विना मकान के रईस है। वे तो यह भी नहीं जानते कि कोयले के जो बोरे पर बोरे चले आ रहे है ये कहाँ से आ रहे है? बम्बई सरकार ने महुओं के संबन्ध मे एक क़ानून बनाया है। महुओं से शराब बनती है, इसलिए घरों मे उनका रखना जुर्म क़रार दिया गया है। जब महुए घर मे नहीं रक्खे जा सकते तब वृक्ष ही रख कर क्या किया जाय? रुपयों के लिए तो हाय-हत्या सदैव मची ही रहती है। ऐसी दशा मे महुओं के वृक्ष कब तक अपनी खैर मना सकते है? केवल खेडा जिले मे पाँच-सात वर्षों मे जितने महुए काटे गये है, उनकी कल्पना करना भी कठिन है। इनके स्थान मे नए वृक्ष कितने लगाये गये? विज्ञान हमे बतलाता है कि जहाँ वृक्ष कम होते है वहाँ वर्षा भी कम होती है। और जहाँ वृक्ष अधिक है वहाँ वर्षा भी अधिक होती है। वर्षा क्यों नही होती? इस सम्बन्ध मे भली भाँति विचार करने पर यही मालूम होता है कि हमारे देश मे जितने वृक्ष काटे जाते है उतने लगाये नहीं जाते। जर्मनी मे इस आशय का एक कानून है कि जिस दिन राजा का जन्म दिन हो उस दिन प्रत्येक पुरुष और प्रत्येक स्त्री को एक वृक्ष अवश्य रोपना चाहिए। किन्तु इस देश मे ऐसे कानून कौन बनाए? लावारिस देश मे किसे किसकी गरज है? जगलों से सरकार को आमदनी होती है। कुछ जगल रिजर्व रखकर बाकी काटे जाते है इनका व्यापार करने के लिए टिम्बर मर्चेण्ट (चीरी हुई लकडी के सौदागर) पैदा हुए है। रेल का विस्तार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। पटरी के नीचे रखने के लिए स्लीपरों की जरूरत पडती है। इसके लिए भी जंगलों पर ही शनि दृष्टि डाली जाती है। ज्यों-ज्यों जंगल कटते जायँगे और जमीन साफ होती जायगी, त्यों-त्यों खेती की उन्नति के लिए डेवेलप-

मेण्ट स्कीमे वनती जायगी। इसे गनीमत ही समझना चाहिए कि कुछ जगल रिजर्व रक्खे जाते है, किन्तु यह भी केवल इसलिए किया जाता है कि लकडी की माग होने के कारण सरकार को इन जगलों से लाभ होता है जिस दिन सरकर को मालूम हो जायगा, कि इसमे कोई लाभ नहीं है, वल्कि जमीन के लाट वनाकर देने मे ज्यादा लाभ है, उसी दिन ये भी साफ हो जायँगे।

यह सब रोना रोने का तात्पर्य यह है कि हमारा देश अनाथ हो गया है। लोग अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार अपना-अपना ढोल वजा रहे है। बेचारा किसान इन सबों के वीच मे मृत्यु शैय्या पर पडा है।

एक जरूरी वात कहनी रह गई। भारत का माल विदेश चले जाने के कारण भूमि की उपजाने की ताकत भी वहुत घट गई है। साधारण नियम यह है कि जमीन से जितना लिया जाय, दूसरे प्रकार से उनमे उतना ही डाला जाय। भारत के प्रति वर्ष अडी, सरसों, तेलहन, चमडा, हड्डियाँ और गेहूँ आदि कीमती वस्तुए लाखो टन विलायत जाता है, परन्तु उनके वदले जमीन मे क्या पडता है? अनेक स्थानों मे तो किसानों को लकडियां नही मिलतीं इसलिए वे गोवर के कडे वनाकर जलाते है। ऐसा करने से सोने-चांदी जैसी यह खाद भी नष्ट हो जाता है। इन्हीं सब कारणों से जमीन की उपजाने की ताकत दिन-दिन घटती जाती है। एक तो किसान की माली हालत खराव, दूसरे उसके बैल अधमरे, तीसरे उसकी पैदावार का एक आना भी घर मे न रहने पाये, ऐसी अवस्था मे किस प्रकार क्या डालकर वह जमीन की उपजाने की ताकत कायम रख सकता है? सरकार का कृषि विभाग कहता है, कि उसे विदेशियों से कृत्रिम खाद खरीदनी चाहिए जिससे कि और भी पैसे विदेशियों के हाथ लगे।

: ११ :

दरिद्रता के कडुए फल

१. दरिद्रता की हद

अभी सवन् १९८६ मे ही एक समाचार छपा था कि पार्लमेण्ट का कोई मजूर सदस्य भूख से व्याकुल होकर सभा-भवन मे ही वैठे-वैठे वेहोश होगया। यह मजूर सदस्य वडा दरिद्र था। क्योंकि इसकी सालाना आमदनी कुल ४०० पौंड अर्थात् ५३३३) रुपये थे। पार्लमेण्ट के प्रभुओं ने तरस खाकर ५० पौंड अर्थात् ६६७) रुपये और वढ़ा दिये, क्योंकि शायद इस गरीव सदस्य को पॉच-छः प्राणियों के वड़े परिवार का खर्च उठाना पडता था।[1] व्रिटिश पार्लमेण्ट की निगाहों मे यह मजूर सदस्य जिसकी आमदनी ४४४) मासिक थी, वहुत दरिद्रता था, और उसकी आमदनी खर्च के लिए काफी न थी। यहाँ के लोगों की आदमनी संसार के सभी देशों से अत्यन्त कम है। सिर पीछे ३७) रुपये सालना से कम नहीं है। अगर १४-१५ रुपये रोज कमानेवाला पार्लमेण्ट की नजरों मे ग़रीव है तो ६-७ पैसे रोज कमानेवाला क्या होगा ? उसे किस कोटि मे रक्खेगे ? दरिद्रता की भी एक हद होती है। हमारी समझ मे जिस आदमी को जीवन की रक्षा के लिए खाना कपडा और रहने की जगह भर

१ यह समाचार कई पत्रो मे छपा था, परन्तु न तो मैंने इसका कोई खण्डन देखा, और न इसके अधिक वृत्तान्त मिले।

मुश्किल से मिले, वह बिना ऋृण लिये कभी अपने यहाँ आये हुए मेहमान को खिला न सके, या किसी मंगन को भिक्षा न दे सके वह 'दरिद्र' है। परन्तु यह दरिद्रता की हद आजकल की नहीं है। यह ब्रिटिश राज मे इस दर्जे पर पहुँच गई है कि हम पहले जमाने मे दरिद्रता की जो परिभाषा करते थे वह भारत के आजकल के मध्यमवर्ग पर लगती है। जिनकी आमदनी साल मे पाँच छः सौ रुपये से कम नही है, या यों कहिए कि जो लोग सालभर मे लगभग उतना कमा सकते है, जितना कि पार्लमेण्ट का दरिद्र मजूर सदस्य हर महीने पाता है। जिन लोगों की आमदनी साल मे ५००) से कम है उनके लिए 'दरिद्र' से भी अधिक दरिद्रता की हद बतानेवाला शब्द होना चाहिए। हमारी समझ मे यह शब्द 'कगाल' है।

हर आदमी यह अधिकार लेकर दुनिया मे पैदा होता है, कि वह अपने शरीर को भला-चङ्गा रक्खे और अपने परिवार को और समाज को, देश को और साथ ही अपने को मन, वचन, कर्म, से अधिक-से-अधिक लाभ पहुंचावे और अधिक-से-अधिक सुख दे, और इन वातों को पूरा करने के लिए उसे पूरी-पूरी योग्यता और स्वतंत्रता का अवसर मिले। समाज मे इन जन्म-सिद्ध अधिकारों को काम मे लाने के लिए उसका रहन-सहन एक निश्चित ऊँचाई ओर अच्छाई का होना चाहिए। हमारे देश का रहन-सहन अनादि काल से बहुत सादा चला आया है। हमारे मजूर और किसान मोटर और विमान रखनेवाले कभी न थे, परन्तु ब्रिटिश राज्य से पहले इस दर्जे की दरिद्रता भी न थी। किसान लोग खाने-पीने से खुश थे।

अमेरिका का एक प्रामाणिक लेखक 'दरिद्रता' की परिभाषा यों

करता है :--"दरिद्रता जीवन की वह दशा है जिसमे आदमी, अपने कम आमदनी के या बेसमझी के खर्चे के कारण ऐसे रहन-सहन से गुजर नही कर सकता जिसमें कि अपने समाज की हद के अनुसार वह आप और उसके परिवारवाले उपयोगी काम कर सके। और वह आप शरीर से और मन से पूरा-पूरा उपयोगी बन सके।" वही लेखक कहता है कि "कगाल होना जीवन की वह अवस्था है जिसमें आदमी पूरा-पूरा या थोडा-बहुत अपने खाने-कपडे के लिए ऐसे किसी आदमी का मोहताज हो जो स्वभाव से या कानून से उसका सहायक न समझा जाता हो।"[१]

हमारी समझ मे श्री गिलिन की ये परिभाषाये बिलकुल साफ़ । अगर उन्होंने कम आमदनी या बेसमझी के खर्च की शर्त न लगाई होती तो 'दरिद्रता' की उनकी पारिभाषा हमारे गुलाम देश के लिए भारतीय धन कुबेरों पर भी लग सकती थी। स्वर्गीय गोखले ने कहा था कि भारतवर्ष मे ब्रिटिश राज ने तरक्की के रास्ते को ऐसा बन्द कर रक्खा है कि यहाँ के ऊंचे-से-ऊँचे आदमी को झुक जाने को लाचार कर देता है। यहाँ कोई आदमी पूरी उपयोगिता को पहुँच ही नहीं सकता परन्तु गिलिन की परिभाषा हमारे यहाँ के पहली श्रेणी के लोगों छोडकर बाकी सारे देश पर लग जाती है। इस तरह भारतव र्ष क साढ़े नन्यानबे प्रति सैकडा आबादी दरिद्र है। जिनको अपनी मेहनत मजूरी से आधे पेट या दूसरे तीसरे दिन भी भोजन मिल जाता है, उन दरिद्रों मे भी इज्जत का खयाल इस दरजे का है कि वे किसीके सामने हाथ पसारने से मर जाना ज्यादा कबूल करते हैं।

१ Gillin, J L, "Poverty and Dependeney" Pp 24, The Century Company New york, 1926 (A W Hayes की Rural Sociology, Longmans, 1929 Pp 430 पर उद्धृत)

वे अपनी आँखों के सामने अपने प्यारों का भूख से तडपना देखते हुए भी भिक्षा मागने का अधम काम कबूल नही करते। इतना होते हुए भी बत्तीस करोड की दरिद्र आबादी मे तीस लाख से कुछ ही ज्यादा भिखमंगो, अवारों, वेश्याओं आदि लाचार निर्लज्जों का होना कोई अचरज की बात नहीं है।

दरिद्रता के इस स्थूल रूप पर विचार करने के बाद हम आगे क्रम से इस बात पर विचार करेगे कि इस घोर अनुपम दरिद्रता के क्या-क्या बुरे असर राष्ट्र पर पड चुके है, हम किन-किन कडुवे फलों का अनुभव कर चुके है।

२. आबादी पर प्रभाव

दरिद्रता का सबसे बुरा असर आबादी पर पडता है।

१ भूख के सताये हट्टे-कट्टे काम करनेवाले गाँवों से भागकर, नजदीक और दूर के शहरों मे चले गये और कुली का काम करने लगे, चाय के बागों मे गुलामी करने लगे या दूर-दूर विदेशों मे चले गये, और वही मर खप गये। इस तरह जो खेती के काम मे कुशल थे गाँवों से निकल गये, और जो काम मे कुशल नही थे रह गये, जिससे खेती का काम दिन-ब-दिन बिगडता गया। गरीबी के कारण बालकों को शिक्षा न मिल सकी, और गाँवों मे पढाने का बन्दोबस्त न हो सका।

२ कुछ तो शिक्षा न मिलने से और कुछ पूरी सफाई और तन्दुरुस्ती का बन्दोबस्त न हो सकने से, जिसमे धन बिना काम नहीं चल सकता था, अनेक तरह के रोग फैल गये, जिनसे आये दिन अनगिनत आदमी मरते जाते है, और आबादी घटती जाती है।

३ दरिद्रता के कारण अकाल पड़ जाता है, और लोग भूखों मर जाते है। अन्न के न होने से लोग नही मरते। अडोस-पडोस के बाजारों मे गाडियों अन्न आता है, और बराबर बिकता रहता है, परन्तु अकाल से पीडित भुक्खडों के पास खरीदने को दाम नहीं होता, इसीलिए भूखों मर जाते है। पैसे सस्ते है, फिर भी किसानों को कोई काम ही नहीं मिलता, जिससे वे पैसे कमा सके। जिस साल अच्छी फसल होती है, उस साल तीन महीने से लेकर छः महीने तक उन्हे काम रहता है, और खेत मजूरी देता है। जिस साल फसल नही होती, उस साल बारह मास की बेकारी है। मजूरी कौन दे ? असल मे अन्न का अकाल नहीं है। मजूरी के थोड़े अकाल मे तो किसान सारा जीवन बिताता है, पूरा अकाल तो उस समय होता है, जब फसल भी जवाब दे देती है।

३ दरिद्रता के कारण आपस के लडाई झगड़े होते है, परिवारों मे अलग गुजारी हो जाती है, और अलग होनेवाले अपना-अपना खर्च न सँभाल सकने के कारण उजड जाते है, खेती-बारी टूट जाती है, इस तरह गाँव की आबादी घटती जाती है।

३. आदमियों पर प्रभाव

दरिद्रता सब दोषों की जड है, जिसके पास धन है वही कुलीन समझा जाता है, वही धर्मात्मा माना जाता है, वही विद्वान और गुण-ग्राहक होता है, उसीकी बात सब लोग चाव से सुनते है, लोग उसके दर्शनों को जाते है। दरिद्र को कोई नहीं पूछता।

दरिद्रता के कारण—

१. हौसले के साथ लोगों मे किसान मिलता-जुलता नहीं, उसमे बेढङ्गापन आ जाता है।

२. धूर्तो के वहकाने मे जल्दी आ जाता है। जितनी चाहिए उतनी सफाई नहीं रख सकता।

३. खाने को न वक्त से पाता है और न उचित मात्रा मे पाता है इससे दुवला और कमजोर हो जाता है। उसकी चाल सुस्त हो जाती है, भरपूर मेहनत नहीं कर सकता, थोड़े से काम मे थक जाया करता है, भाँति-भाँति के रोगों का शिकार होता है, उसका जीवन कम हो जाता है।

४ उसका हौसला दिन-व-दिन परत होता जाता है और रहन-सहन का परिणाम घटता जाता है।

५ वाल-वच्चों के सासारिक वोझ से जल्दी छुटकारा पाने के लिए थोडी ही उम्र मे व्याह कर देता है और पास की नातेदारियो मे ही व्याह करके वश को और भी खराव कर देता है।

६. व्याह न कर सकने के कारण व्यभिचार मे फंस जाता है और वर्णसंकर पैदा करता है। वच्चे वहुत पैदा होते हैं परन्तु पैदाइस के समय काफी मदद न मिलने के कारण वहुत से वच्चे सौर मे ही मर जाते है और दूध आदि पालन-पोपण का सामान न मिलने से छुटपन ही मे वच्चे माता की गोद सूनी कर देते है।

७ अनेक दुखिया भुक्खड नातेदार, जिनको कहीं ठिकाना नहीं लगता, गरीव किसान के घर जवरदस्ती आकर रह जाते है। इस तरह उसके कष्ट और भी वढ जाते है।

८ उसका कुटुम्व अक्सर वडा होता है। जितना ही वडा कुटुम्व होता है सिर पीछे उतनी ही वेकारी भी वढ़ती है।

९ वह ज्यादा पोतवाला अच्छा खेत नहीं ले सकता। खराव खेत ज्यादा मेहनत चाहते है जो वह वेचारा कर नहीं सकता।

१० चिन्ताओं से उसका दिमाग़ खराब हो जाता है।

११ उसमें धर्म-भाव और देश-भक्ति के हौसले नहीं रह सकते।

१२. उसे देश की दशा का और अपनी दशा का ज्ञान नहीं रहता, इसलिए चुपचाप दुःख में घुलता रहता है, और कर्म ठोंककर रह जाने के सिवा कोई उपाय नहीं कर सकता।

१३. स्वभाव चिडचिडा हो जाता है, आये दिन परिवार के भीतर और बाहर झगड़े होते रहते है, जिसका फल होता है फ़ौज-दारी मुक़दमेबाजी और गृहस्थी का सत्यानाश।

१४ भाँति-भाँति की चिन्ताओं से छुटकारा पाने के लिए तरह-तरह के नशों की कुटेव लग जाती है। तमाखू, गाँजा, भङ्ग, शराब, ताडी, अफीम आदि के पीछे तबाह हो जाता है।

१५ औरों की निगाहों मे उसकी इज्जत घट जाती है।

४. रहन-सहन पर असर

हमारे देश के किसानों का रहन-सहन कितना नीचे गिर गया है इसे सब जानते है। उसके पास जैसे खाने का टोटा है वैसे ही पहनने का भी। उसके पुरखों के समय मे जब चरखा चलता था तब उसे कपड़ों का टोटा न था, आज खाना कपडा दोनों का टोटा है। तीसरी जरूरी चीज घर है। अब वह घर भी अपने लिए दरिद्रता के कारण अच्छा नहीं बना सकता। वह जीते जी नरक भोगकर रहा है।

अपनी दरिद्रता के कारण--

१. अपनी उपज का सबसे अच्छा माल बेच डालता है, और खराब-से-खराब अपने खर्च के लिए रख लेता है। जो शायद बिक ही नहीं सकता या लाचारी उसे बेचने नहीं देती।

२. उसका भोजन अक्सर बे-नमक का होता है। बेचारा नमक तक खरीदने की सामर्थ्य नहीं रखता। जिसकी आमदनी ६ पैसे रोज से भी कम हो, वह नमक मिर्च कहाँ पावे।

३ उसके भोजन मे पालन-पोषण का तत्त्व बहुत कम होता है।

४. वह काफ़ी भोजन नहीं पाता, कभी आधा पेट पाता है, और कभी वह भी नहीं।

५. उसे दूध, घी, मठा, तो क्या मिलेगा, उसके बच्चों को छाछ भी नसीब नहीं होती।

६ उसके ढोर भूखों मरते है, उनके लिए घर नहीं होता।

७. उसके घर उसे धूप बरसात आँधी तूफ़ान और जाड़े से बचाने के लिए काफी नहीं होते।

८. जङ्गलों और पेडों पर कोई अधिकार न होने से उसे जाड़े के लिए काफी ईंधन नहीं मिलता, और वह लाचार हो उपले जलाने का आदी हो गया है, जिससे खेत के लिए उत्तम से उत्तम खाद वह चूल्हे मे जला देता है। परिस्थिति ने उसे भुलवा दिया है।

९. उसके पास काफी कपडा नहीं है, और जो है वह विलायती है, जो काफी टिकाऊ नहीं होता, मगर सस्ता होने के कारण लिया जाता है।

१० उसकी खेती का सामान बढ़िया नहीं है, पूरी मेहनत करके भी उससे वह उतना अच्छा काम नहीं ले सकता, जितना कि अच्छे हल बैल से होता।

११ उसे अपने रोजगार के बढाने का कोई साधन प्राप्त नहीं होता।

१२. मजरी की दर बहुत कम होने से किसान को ऐसे काम

के लिए मजदूर नहीं मिल सकते जिन्हें वह अकेला नहीं कर सकता और वहाँ लडकों और औरतों की मदद काफी नहीं होती।

१३ अपने खेतों पर जो मजूरी की जाती है उसका वदला भी वहुत थोडा मिलता है।

१४. वह गाय पाल नहीं सकता और न छोटे-मोटे घरेलू रोजगार कर सकता है, और करे भी तो दशा ऐसी है कि रोजगार मे सफलता नहीं मिलती।

घर गृहस्थी मे किसान और उसका परिवार अपने दादा के के समय मे आज की तरह बेकार नहीं रहता था। खेती से जो समय वचता था उसमे मजवूत हाथ-पैरवाला किसान और मेहनत के काम किया करता था। गाडी चलाकर थोक का थोक माल वाजार ले जाना, खॅडसारे चलाना, रूई धुनना, गाय भैंस आदि वडे ढोर पालना, सन पटसन आदि वटना, टोकरियाँ वनाना आदि उनके तरह के काम देहातों मे सव तरह के लोग करते थे। इसके सिवा पेशेवाले किसान, कुम्हार, लुहार, वढई आदि तो अपने काम करते ही थे, ये पेशेवाले तो थोडा वहुत अव भी अपना काम करते ही हैं। इनके सिवा इनके घर की स्त्रियाँ और लडके भी तरह तरह के काम करते थे। घर की गाय, वकरी, भेड आदि की सेवा मे लडके वड़ी मदद पहुचाते थे। स्त्रियाँ और लडकियाँ दूध, दही, मक्खन आदि के काम करती थीं, आटा पीसती थीं, धान आदि कूटती थीं, मक्खन निकालती थीं, चर्खा कातती थीं। कपड़े सीना, रॅगना और वच्चों का लालन-पालन चौका-वासन रोसोई ये सारे काम घर मे होते थे। परन्तु आज गौवों का पालन करने का सामर्थ्य न होने से दूध, दही, मक्खन, घी का काम उठ गया है। चर्खा और ओटनी को उठ गये

दो पीढ़ी के लगभग हो गये। घी दूध और कपास का काम जो घर मे होता था, किसान के लिए वडे लाभ की चीजें थीं। घी दूध मे परिवार भी तृप्त होता था और पैसे भी आते थे। ओटनी और चर्खे से परिवार का तन भी ढकता था और पैसे भी आते थे। इसके सिवा पेशेवालों के गाँव के गाँव होते थे जो आज उजड गये है। जहाँ कहीं खद्दर वनाने की कला वढी हुई थी, वहाँ कोरी, कोष्टी, ताँतो और जुलाहे आदि वुनकरों की वडी-वडी वस्तियाँ थी। ये वस्तियाँ उजड गईं। जो थोडी वहुत वची हुई हैं विलायती सूत मे उलझी हुई है। ग्वालों के गाँव के गाँव थे, जिनके यहाँ दूध घी का भी रोजगार था और खेती भी होती थी। वहुत से ऐसे गाँव उजड़ गये और जो वचे हुए हैं उनकी दशा दरिद्रता से आँखों मे खून लाती है। यों गाँव-गाँव मे जहाँ सभी जाति और पेशे के किसान मिलजुलकर रहते थे, वहाँ दो एक घर खद्दर वुननेवालों के भी थे, और हफ्ते के दिनों मे जहाँ वाजार लगा करते थे, सूत कपास और खद्दर का लेनदेन और विक्री हुआ करती थी। रोजगार के अच्छा होने से लोगों के रहन-सहन का परिमाण वढा हुआ था। रोजगार टूट जाने से रहन-सहन का परिमाण गिर गया।

५. शिक्षा पर प्रभाव

पहले गाँव-गाँव मे टोल थे, पाठशालायें थीं। गाँव के भय्याजी सव वालकों को पढाते थे। गाँव के सभी किसान वालक थोडा लिखना-पढ़ना और हिसाव-किताव सीखते थे। टोलों, पाठशालाओं के खर्च के लिए माफी के खेत थे। उनकी आमदनी से पढ़ाई का खर्च चलता था। गाँववाले मास्टरों को सीधे देते थे। और अधिकाश

पञ्चायत के द्वारा सारा खर्च दिलवाया जाता था। पढाई के लिए कहीं-कहीं घर होते थे, कहीं चौपालों मे जगह होती थी, कही मन्दिरों और मठों मे और कहीं-कहीं बागों में। जब पंचायतों का अधिकार छिन गया, माफी खेत छिन गये, किसान दरिद्र हो गये, तब सारा बन्दोबस्त टूट गया। कुछ काल तक शिक्षा का महत्व समझनेवाले किसानों ने, अधिकाश इक्कों दुक्कों ने, अपनी ओर से बच्चों के पढ़ाने का प्रबन्ध जारी रक्खा। कहीं-कहीं बेहरी लगाकर कुछ समय तक पाठशालाये ठहरीं, परन्तु ठीक संगठन न होने से इस तरह के निजी उद्योग भी समाप्त हो गये। दरिद्रता के कारण--

१ गाँववाले बच्चों के पढ़ाने का बन्दोबस्त नहीं कर सकते। जो स्कूल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने कायम किये है वे बहुत कम है, दूर-दूर पर है,. जहाँ छोटे-छोटे बच्चे नहीं पहुच सकते, इसलिए देश के बच्चों की बहुत थोडी गिनती तालीम पा सकती है।

२. जिन थोड़े से बच्चों को तालीम दी जाती है, उन्हे किसानों के काम की कोई शिक्षा नहीं मिलती, क्योंकि किसानों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मे शिक्षा के बारे मे अपनी नीति चलाने का कोई अधिकार नहीं है, और उनके पास वे साधन नहीं है कि काम की शिक्षा दे सकें।

३ वे अपने पढ़नेवाले बच्चों को खेती का काम नहीं सिखा सकते। पढ़नेवालों को ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह शिक्षा पाकर खेती आदि के कामों को नीच समझने लगते है। कस्बों और शहरों मे हलकी नौकरियों के पीछे ठोकर खाते फिरते हैं।

४ खेती की शिक्षा न होने से खेती का काम दिन पर दिन खराब होता जा रहा है।

५ किसान इतने गरीब है कि बच्चों के लिए किताबे मोल नहीं ले सकते ।

६ वे अपने लिए कोई अखबार नहीं खरीद सकते, जिससे खेती का, रोजगार का या दुनिया का कुछ हाल जान सकें ।

७. वे देश के आन्दोलनों की खबर नहीं रखते ।

८ वे अपनी ही दशा नहीं जानते, और न उसके सुधारने के लिए कोई आन्दोलन कर सकते है ।

९. वे अपनी ओर से शिक्षक नहीं रख सकते जो उनके नेता का काम करसके और प्रजाहित के कामों मे मदद दे ।

१०. वे आपस में से किसीको नेता के काम के लिए तैयार नहीं कर सकते ।

११ उनकी बहुत बडी संख्या निरक्षर हो गई है, और निरक्षरता के जितने बुरे परिणाम है वे सब भोग रही हैं ।

११ बालकों को ऊँची शिक्षा का कभी अवसर नहीं मिलता ।

१३. खेती की शिक्षा न मिलने से लाभ कम होता है । लाभ न होने से खेती का सुधार नहीं होता, सुधार न होने से दरिद्रता बढ़ती जाती है । दरिद्रता बढते जाने से आगे शिक्षा की भी कोई आशा नहीं हो सकती । यह बडा ही दूषित भ्रामक चक्र है, जिसमे सारा देश फँसा हुआ है ।

६. जायदाद पर प्रभाव

जब किसान खुशहाल था, तब उसकी गृहस्थी बडी होती थी, घर बड़े और हवादार थे, सब ऋतुओं के अनुकूल बने हुए थे । गोशाला थी, बाग, कुएँ, तालाब, मन्दिर, चौपाल सब कुछ था । पशुओं

के चरने के लिए गोचर-भूमि अलग होती थी। किसान और उसके पशु ख़ुश रहते थे। आज सारी दशा विपरीत है।

दरिद्रता के कारण—

१. वह हवादार और अच्छे घर नहीं बना सकता। जीवन के आवश्यक सामान नहीं जुटा सकता।

२. वह लाचार होकर उपले जलाता है, क्योंकि लकडी न खरीद सकता है, न निर्धनता के कारण पेड मोल ले सकता है, न जमींदार से पेड लगाने या काटने के लिए आज्ञा मोल ले सकता है और न विदेशी सरकार की बाधा के कारण जङ्गल से लकडी काट सकता है। इस तरह उसे खेत के लिए सबसे उत्तम खाद खोना पड़ता है।

३. उचित खाद के बिना खेत की पैदावार दिन-पर-दिन घटती जाती है।

४. वह खेत का मालिक नहीं है, और जानता है कि खेत की दशा बहुत अच्छी हो गई तो लगान बढ़ जायगा, या बे-दखली हो जायगी, या बन्दोबस्त पर सरकारी मालगुजारी बढ़ जायगी। इसलिए खेत मे सुधार करने का उसे हौसला नहीं हो सकता।

५. वह अपने गाय, भैंस, बैल का ठीक-ठीक पालन-पोषण नहीं कर सकता।

६. जो पहले गोचर-भूमि थी वह अब खेत है। ढोरों की चराई का बन्दोबस्त अच्छा नहीं है जिससे ढोर बहुत दुबले हो गये हैं।

७ लोग गोपालन के रोजगार मे टोटा होने से उस ओर ध्यान नहीं देते, इससे यह कारोबार चौपट हो गया है।

८. गो-वंश-सुधार की रीतियाँ भूल जाने से ढोरो की नसल खराब हो रही है।

९ फलों का रोजगार ठीक रीति से न होने कारण लोगों का ध्यान अच्छे बाग लगाने या बाग की रक्षा पर नही है।

१०. आपस मे लडाई-झगडा होने के कारण बहुत छोटे-छोटे हिस्सों मे बॅटवारा हो रहा है, एक खेत घर के पास है तो दूसरा मील भर दूर, तीसरा उससे एक फर्लाङ्ग पर, इस तरह इकट्ठी खेती करने का मौका नहीं है। दूसरे सब मदों मे खर्च बढता है, और रखवाली ठीक तौर पर नहीं हो सकती।

११. खेती के औजार पुराने और दकियानूसी हो गये है, और नये और अच्छे खरीदे या बनवाये नहीं जाते।

माली हालत किसानों की इतनी खराब है कि वे बाप-दादों की जायदाद को धीरे-धीरे खोते जाते है, उनके पास धन नहीं है कि अपनी भागती हुई जायदाद को चतुर साहूकार के चङ्गुल से बचा सके।

७. तन्दुरुस्ती पर असर

पहले के किसान शहर के लोगों के मुकाबले अधिक हृष्ट-पुष्ट और तन्दुरुस्त समझे जाते थे, पर आज वह चलती-फिरती हुई ठठरियाँ है, जिनके चेहरे पर उदासी है। जान पडता है कि उन्होंने हसी-खुशी के दिन नही देखे है, और सीधे स्मशान की ओर चले जा रहे है। दरिद्रता के कारण—

१ अपनी तन्दुरुस्ती पर वे उचित ध्यान ध्यान नहीं रख सकते।

२ कभी-कभी उन्हे खेतों मे कमर-तोड परिश्रम करना पडता है, परन्तु साल मे अधिक बेकार ही रहना पडता है। इस असंयम से वे बच नहीं सकते।

३ पोषण काफी नहीं होता, इसलिए जीवनीशक्ति कम होती है और रोग का मुकाबला नहीं कर सकती।

४. रोग के कीड़े उनके शरीर में जल्दी फैलते और घर कर लेते है।

५. पेट के कीड़े और चुनचुने उन्हे ज्यादा होते है।

६ ठीक भोजन न मिलने से तरह-तरह के चर्म रोग होजाते है।

७ फैलनेवाले रोग जब फैलते है तो कावू मे नहीं आते।

८. किसान लोग रोग की भयानकता समझते हुए भी उससे बचने का उपाय नहीं कर सकते।

९ कपडा काफ़ी न होने से फसली बीमारियाँ होती रहती है।

१०. घरों मे काफ़ी बचाव नहीं होता।

११. मलेरिया से बचने के लिए वे मसहरियाँ इस्तैमाल नहीं कर सकते।

१२. घरों मे हवा और रोशनी का काफी बन्दोबस्त नहीं हो सकता।

१३ खाने-पीने के लिए पानी बहुत गन्दा आता है। साफ़ और शुद्ध जल का बन्दोबस्त अनेक स्थानों पर नहीं हो सकता। तालाब का पानी हर तरह पर गन्दा होता है और कुएँ गहरे नहीं होते तो परनालों की गन्दगी कुएँ के पानी मे मिल जाती है। शुद्ध पानी का खर्चीला बन्दोबस्त नहीं किया जा सकता।

१४ स्वास्थ्य-रक्षा की शिक्षा उन्हे नहीं मिलती।

१५. बच्चे बडी संख्या मे मरते है।

१६ दवा-इलाज की सहायता नहीं मिलती।

१७. अच्छे वैद्य-हकीम गाँवों मे नहीं मिलते। बीमार होने पर दवा-इलाज का खर्चा उठा नहीं सकते।

१८ अस्पताल बहुत दूर पडते है।

१९ देहातों मे घूमनेवाले डाक्टर न तो समय पर पहुँच सकते हैं, न काफी मदद करते हैं, और न इस अनमोल मदद का लाभ ज्यादा लोग उठा सकते हैं।

२०. लोगों की औसत उमर घटकर २८ वर्ष हो गई है।

२१ शरीर के पोषण के लिए जितने पदार्थ चाहिएँ उनमे मुख्य नमक है। जो अनेक रोगों से रक्षा करता है, यह नमक आदमी को काफी नहीं मिलता, और ढोरों को तो बिलकुल नहीं मिलता, क्योंकि किसानों की थोडी आमदनी के लिए वह बहुत महँगा है।

२२. ढोरों मे बीमारियाँ फैल जाती हैं, मगर किसान इलाज नहीं कर सकता।

२३. जहाँ ढोर बाँधे जाते हैं वहाँ की काफी सफाई किसान नहीं कर सकता।

२४ बीमारियों से ढोर मर जाते हैं और दूसरे ढोरों मे बीमारी फैला जाते हैं, इस तरह किसान का कई तरह का नुकसान होजाता है।

२५ ढोरों की बीमारी मे डिस्ट्रिक्ट बोर्ड से मदद का लाभ बहुत कम उठा सकता है।

जब गाँव का बन्दोबस्त पंचायत के हाथ मे था, गाँव मे वैद्य भी होते थे, और दवा-इलाज का बन्दोबस्त अपना होता था। उसके सिवाय शिक्षा ऐसी थी कि ग्वाले और गृहस्थ किसान शालिहोत्री और डाक्टर का बहुतेरा काम जानते थे। धाय का काम तात्कालिक चिकित्सा और दवा-दर्पण घर-घर बूढ़े किसान और घर की बाल-बच्चों वाली लुगाइयाँ इतना काफी जानती थीं, कि डाक्टर और अस्पताल की मोहताज न थीं। परन्तु पुरानी शिक्षा की विधि उठ गई, और बस्ती के उजडने से भी परम्परा और अभ्यास दोनों की हानि हुई।

८. माली दशा पर प्रभाव

इस विषय मे तो पिछले पृष्ठों मे हम 'सरकारी लगान नीति', उसकी रकमे और उसके वसूल करने की विधि इत्यादि पर विचार कर चुके है। सारी दरिद्रता का कारण तो वह स्वार्थी नीति है जिसका व्यवहार भूमि-कर के सम्बन्ध मे किया जाता है। वही तो किसान की दरिद्रता का प्रधान कारण है। दरिद्रता के कारण—

१ सिंचाई का वह काफ़ी प्रवन्ध नहीं कर सकता, और वर्षा के भरोसे रह जाता है। वर्षा न हुई तो फसल गई।

२. वह अकेले मेहनत करता है। मजूरी न दे सकने के कारण या मजूर न मिलने के कारण उसकी खेती जितनी चाहिए उतनी सफल नहीं होती।

३ पैदावार के मुकाबले लागत खर्च खेती मे ऊँचा पडता है, क्योंकि वह अच्छे औजार नहीं काम मे ला सकता। उसके खेत दूर-दूर है और टुकड़े टुकड़े है। उसके वैल दुवले हैं, और अनाज इसी-लिए कम उपजता है।

४. जरूरत पडने पर उसके पास कोई जमा नहीं है, जो लगा सके। पहले जमाने मे उसकी औरत के गहने उसके लिए वैंक के समान थे। अव वह गहने भी नहीं वनवा सकता।

५. लगान या मालगुजारी देने के समय उसे लाचार होकर साहूकार से कर्ज लेना पडता है, और खेत रहन रखना पडता है। किसानों पर लगभग आठ अरव के कर्ज लदा हुआ है।

६. आये दिन की मुकदमेवाजी से किसान परेशान रहता है, और अधिक से अधिक लुटता जाता है।

७. गांजा, ताड़ी शराव की कुटेव मे फॅसता है, और तन मन धन और धर्म सब खो देता है।

८. शादी-गमी, काम-काज मे वह अपनी हैसियत से ज्यादा खर्च करता है, और कर्ज से लद जाता है।

९. वह अपने लिए जरूरी कपड़े भी नहीं खरीद सकता। उसकी खरीदने की ताकत बहुत कम हो गई है।

१०. काबुली, बलूची, पठान और दूसरे व्यापारी उसे जाड़े के शुरू मे दूने-तिगुने दामों पर उधार कपड़े देकर ठगते है, और जाड़ा बीत जाने पर बडी कडाई से वसूल कर लेते हैं।

११. खेती के और सामान भी वह नकद नहीं खरीद सकता। उधार के कारण उसे बहुत ठगाना पडता है।

१२ खेत की उपज दिन-दिन घटती जाती है। वह उपज बनाये रखने के लिए उपाय नही कर सकता।

१३. लगान की दर इतनी ऊंची है कि आधे से ज्यादा खेत का मुनाफा निकल जाता है, और उसे अपनी लागत का खर्चा और उस-पर का सूद मुश्किल से मिलता है। फसल अच्छी न हुई तो वह भी गया।

१४. वह कांग्रेस का चन्दा नहीं दे सकता, और अपना प्रतिनिधि कांग्रेस मे नहीं भेज सकता।

१५ गाँव मे शिक्षा रक्षा और मन-बहलाव के लिए जो उपाय वह पहले कर सकता था, अब नहीं कर सकता।

१६ बुढापे के लिए और अनाथों और विधवाओं के लिए कोई बन्दोबस्त नहीं कर सकता।

१७ आग लगने पर, बाढ आने पर और ओले पडने पर वह कोई उपाय नहीं कर सकता। बीमे के लिए उसके पास धन कहाँ है?

१८. उसकी औसत आमदनी छः पैसे रोज है। इतनी थोडी आमदनी पर वह आधा पेट मुश्किल से खा सकता है, और जरूरतों की कोई चरचा नहीं।

१९. वह साल मे औसत छः महीने तक बेकार रहता है। उस बेकारी की दशा को 'फ़ुरसत' नहीं कह सकते। दरिद्रता के कारण, इससे फ़ुरसत का सुख वह नहीं उठा सकता।

२०. उसके अनेक रोजगार छिन गये है। विदेशियों की चढ़ा-ऊपरी से, विदेशी सरकार होने के कारण उसके रोजगारों की रक्षा होने के बदले विनाश हो गया है। कपास की खेती, ओटना, धुनना, कातना, बुनना बन्द हो गया है। खॅडसाले बन्द हो गई है, गोचर-भूमि के खेत बन जाने से और जीते हुए गाय-बैल के मुकाबले मे चमडा, मास, चर्बी, हड्डी, सींग आदि से ज़्यादा दाम मिलने के कारण गोवंश का नाश हो गया, और ग्वालों का रोजगार चौपट हो गया। ये सारे रोजगार नष्ट हो जाने से किसान के आधे जीवन की बेकारी पर मोहर लग गई।

किसान की माली हालत लिखने लायक नहीं है। देखने को आँखे नहीं रह गई है। सोचने से कलेजा मुँह को आता है। इस माली हालत को हम शून्य नहीं कह सकते। यह शून्य से इतना कम है, कि आठ अरब रुपयों के आगे ऋृण का एक बहुत मोटा-सा चिन्ह लगा हुआ है। यह माली हालत दरिद्रता के कारण नहीं है, बल्कि सारी दरिद्रता का कारण है।

६. धर्म-पर प्रभाव

धन का उपभोग करते हुए जो आदमी संसार को असार समझ कर उसका त्याग करता है वह विरक्त कहलाता है, परन्तु संसार मे

विरक्त बहुत थोड़े है और होने भी चाहिए। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी संसार मे थोड़े ही होते है। सबसे ज्यादा संख्या संसार मे गृहस्थों की होनी चाहिए, जिनसे बाकी सबका पालन-पोषण होता है। धर्म की सबसे अधिक जिम्मेदारी गृहस्थों पर आती है। भारतीय किसान किसी समय बडा ही धार्मिक था। उसके द्वार से मंगन निराश होकर नहीं लौटता था। होम, जप, तीर्थ, पूजा, त्यौहार और उत्सव उसके जीवन के अङ्ग थे। ससार मे उसके बराबर सफाई से रहनेवाला कोई न था। उसकी ईमानदारी और सचाई जगत मे प्रसिद्ध थी। वह अपनी बात पर मर मिटता था। उसके यहाँ स्त्री जाति का पूरा सम्मान था। पराई स्त्री को मा, बहन, बेटी समझता था। नशेबाजी की तरफ कभी आँख उठाकर भी न देखता था। जहाँ संसार के किसान मास खाने के लिए पशु पालते थे, वहाँ भारतीय किसान अहिसा—किसी प्राणी का जी न दुखाना और प्राणिमात्र से अपना आपा समझकर सच्चा प्रेम रखना—अपना परम धर्म मानता था। गाँवों की विशेष रूप से और पशुओं की साधारण रीति से रक्षा करता था। हम यह नहीं कहते कि भारत मे मास खानेवाले न थे। परन्तु ससार मे और देशों के मुकाबले हमारे देश मे मास खाने की चाल बहुत कम थी, और इस कमी के कारण हमारे यहाँ के किसान ही थे। परन्तु आज क्या दशा है? दरिद्रता के कारण धर्म-बुद्धि नष्ट हो गई, और सदाचार के बदले कदाचार ने अपनी हुकूमत जमाई। दरिद्रता के कारण—

१ वह आवश्यक दान नहीं कर सकता।

२ तीर्थाटन नहीं कर सकता।

३. व्रत, होम, जप आदि भी नहीं कर सकता।

४ पूजा आदि नहीं कर सकता। और इन कामों मे शिथिलता आने से उसके मन से धीरे-धीरे श्रद्धा उठ गई, इसलिए वह मन्दिरों मे दर्शनों और जल चढाने के लिए वहुत कम जाता है।

५. खेती के सम्बन्ध मे होनेवाले अनेक यज्ञ वह नहीं करता।

६ पुरोहितों की रोजी उनका मान कम होने से वहुत करके जाती रही।

७. कथा-पुराण से उसे बडी शिक्षा मिलती थी, परन्तु व्यास को दक्षिणा देने के लिए अव उसके पास कुछ नहीं है।

८ मन्दिरों और शिवालयों की दशा अश्रद्धा के कारण खराव है। आजकल के सुधारक सम्प्रदायों ने जो धार्मिक खर्च घटा दिया है, केवल इसी कारण वह विना उन धार्मिक सम्प्रदायों मे सम्मिलित हुए, उनकी किफायती रीति वर्तने लगा है। धार्मिक वातों मे उसपर किसी का दवाव नहीं है। सामाजिक वातों मे समाज के दवाव के कारण ही वह काम-काज मे वहुत खर्च करने को लाचार हो जाता है।

९ गांव मे अव पुरोहित का होना जरूरी नहीं रह गया है।

१० धार्मिक मेलों और पूजाओं मे दिन-पर-दिन इकट्ठे होने वालों की गिनती घटती जाती है।

११ मेलों मे जाकर वह केवल धार्मिक काम नहीं करता था। वह मनवहलाव भी करता था और पशु और अपने खेती के सामान आदि भी खरीदता था। पर आज पैसे विना उसका मेला फीका है।

१२. वह मुकदमावाजी मे फँसकर धूर्त, झूठा, दगावाज और वेईमान हो गया।

१३. उसे अपने स्वार्थ के लिए आज हत्या करने आग लगाने जहर देने आदि पापों से हिचक नहीं है। वह भूख के मारे खूँखार

हो गया है। किसी का दिल दुखाना उसके निकट कोई पाप नहीं रह गया है। देखने मे वह अहिसक अब भी है, परन्तु उसका कारण प्रेमभाव नहीं है। उसका कारण है उसकी अत्यन्त कमजोरी।

१४. किसान का अन्तरात्मा अभीतक जीता नहीं गया है। वह अब तक उसे बुरे कामों से रोकता है, परन्तु वह अन्तरात्मा का शब्द न सुनने के लिए अपनेको तमाखू, भाँग, गाँजा, अफ़ीम, ताडी, शराब आदि नशों से बेहोश कर लेता है, और तब दुराचार मे लगता है।

१५ वह व्यभिचारी हो गया है, और स्त्रियों का उसकी निगाहों मे पहले का सा सम्मान नहीं रह गया है।

१६. स्त्रियाँ बेचारी उसकी पूरी अवस्था नहीं समझतीं, और कुछ दरिद्रता और कुछ अशिक्षा के कारण उसकी पूरी सहायता नहीं कर सकतीं। आये दिन घर मे झगड़े होते रहते है, और उनका निरादर होता रहता है।

आजकल नास्तिकता के जमाने मे धर्म के ह्रास की इस गिनती पर अनेक पंडितम्मन्य पाठक मुस्करायेगे। परन्तु जहाँतक लेखक को मालूम है, रूस को छोडकर संसार के सभी देशों मे किसान के कल्याण के लिए उसमे धार्मिकता और नैतिकता का भाव आवश्यक समझा जाता है। हम साम्प्रदायिकता के विरोधी है, परन्तु धार्मिकता को राष्ट्रीयता का आवश्यक अंग समझते है।

१०. कला पर प्रभाव

कला तो सब तरह से सुख और समृद्धि पर निर्भर है। जहाँ पेट भर खाने को नहीं मिलता, वहाँ तो कला की चर्चा ही वृथा है।

ऐसा भी कोई न समझे कि कला की जरूरत ही नहीं है। मनबहलाव और व्यायाम—सामाजिक शिष्टाचार, मेले-तमाशे और मनोरंजन की सारी सामग्री कला मे शामिल है। इन सब बातो का आदमी की आयु की कमी-वेशी पर प्रभाव पडता है। दरिद्रता के कारण—

१ खेल-कूद का सब तरह से अभाव हो गया है। बड़े तो खेल को भूल ही गये है। भूखे पेट खेल क्या होंगे ?

२. बच्चे भी भूखों बिल्लाते हैं, कबड्डी आदि खेलने को इकट्ठे नही होते।

३ बालजीवन सुखमय नहीं है।

४ बच्चों को खिलौने नहीं मिलते।

५. मेले-तमाशे बहुत कम होते है।

६ पैदल दूर की यात्रा करने का हौसला नहीं है, क्योंकि खाने को नहीं है, और मार्ग का सुभीता नहीं है।

७ शाम को कथा-वार्ता नहीं होती, क्योंकि लोग न शिक्षित है और न अनुभवी।

८ लोगों को जीवन मे रस नही रहा, लोग फूल के पेड नहीं लगाते, गमले नही रखते और घर-द्वार सॅवारने का शौक नहीं रहा।

९. स्त्रियों को चौक पूरने और भीत पर चित्र लिखने का शौक नहीं रहा।

१० तीज-त्योहारों पर गाने-बजाने का शौक घट गया है, दीवाली और फाग मे अब वह पहले की-सी उमङ्ग नहीं है।

११. संसार की वस्तुओं के सौन्दर्य की ओर ध्यान कम है, गाने-बजाने का रिवाज घट गया है।

१२. अपने शरीर को सुन्दर और स्वच्छ रखने की ओर ध्यान नहीं है, और हृष्ट-पुष्ट बनाने का हौसला नहीं है।

१३. जीवन की गाडी को घसीटकर मौत की मंजिल तक किसी तरह पहुचाना ही कर्तव्य मालूम होता है।

वैराग्य मे भी ऐसा निर्वेद हो जाता है कि आदमी सासारिक जीवन मे कोई रस नही पाता और ऊबकर परमात्मा मे चित्त लगा लेता है। परन्तु वह बात दूसरी है। किसान भी अपने जीवन से ऊब गया है, परन्तु इसलिए नहीं कि उसका चित्त परमात्मा मे लग गया है। उसके निर्वेद का कारण भक्ति नहीं है, उसका कारण है भूख। जो जीवन की सब से बडी जरूरत है—अर्थात् भोजन, वही उसे लाख जतन करने पर भी नहीं मिलता। भारत का किसान आजकल कुराज्य के प्रभाव से नरक-यातना भोग रहा है।

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी,
सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

अच्छे राजा को प्रजा प्यारी होती है, क्योंकि प्रजा (प्रकृति) को प्रसन्न रखने से (रञ्जनात्) ही राजा कहलाता है। विदेशी राजा को यहाँ की प्रजा उसी तरह प्यारी है जिस तरह मांस खानेवाले को बकरी। परन्तु विदेशी हुकूमत की नीति उसीके लिए अन्त मे घातक है। मुर्गी से एक सोने का अंडा नित्य लेना लाभकारी है। मारकर सब अडे एकसाथ ले लेना, अथवा अडे देने की ताकत को नष्ट कर देना, बुद्धिमानी का काम नही है। विदेशी हाकिमों मे अधे स्वार्थ के मुकाबिले दूरदर्शिता अधिक होती तो वे अपनी सारी कोशिश इस बात मे लगा देते कि भारत की खरीदारी की ताकत नित्य बढती जाय, और हमारा माल खपता जाय। वे अपने यहाँ

के स्वार्थी सिविलियनों के द्वारा भारत के धन को फिजूलखर्ची मे न लगाते। भूमि-कर बहुत हलका लेते। किसान सुखी रहता, वह विलायत का बहुत अच्छा ग्राहक होता, और इस तरह विलायत के माल तैयार करनेवाले शायद आजकल से अधिक धन खींच ले जाते। शुद्ध और सच्चे व्यापारी की नीति बुरी नहीं है, परन्तु बेईमान और ठग व्यापारियों की नीति अन्त मे उन्हींके लिए घातक होती है। इस घड़ी किसान के सिर पर दरिद्रता का बोझ असह्य होगया है। दम नाकों मे आगया है। एक-एक क्षण की देर उनके लिए दूभर है। उनकी ख़रीदारी की ताकत नष्ट होजाने से देश का भीतरी व्यापार भी बुरी दशा मे है। दरिद्रता की दशा मे पाप और व्यभिचार का परनाला देहातों से बह-बहकर चारों ओर से शहरों मे आकर सिमटता है, जहाँ बस्ती घनी है और आदमी व्यसनी हैं। फल यह होता है कि दरिद्र देहातो से घिरे हुए शहर गन्दगी की खान होजाते है।[१] शहरवालों पर प्रत्यक्ष कर कम लगे हुए है, उनकी

१ मिस मेयो ने अपनी अमर अपकीर्ति "मदर इण्डिया" मे जो भारत के गदे चित्र खींचे है उनकी अत्युक्ति को भी हम सच मानले तो वह विदेशी शासन की घोरतम निन्दा होजाती है। इसके लिए मिस मेयो के ही देश के खेती के सम्पत्तिशास्त्र के भारी-भारी विद्वान और प्रामाणिक लेखक एक स्वर मे यही कहते है कि दरिद्रता के कारण सभी तरह के पातक और गन्दगियाँ होती है, जो शहरो को भी खराब कर डालती हैं। इनके महाकारण—अर्थात् दरिद्रता—के लिए देश की सरकार ही जिम्मेदार होती है। जो पाठक स्वय इस विषय को देखना चाहे वे इन प्रमाणो को स्वय पढले—Articles Contributed by

(1) Richard T Ely, Research Professor of Economics and Director of the Institute for Research in Land Economics and Public Utilities

दशा इसीलिए कुछ अच्छी है। इसीलिए वे व्यसनों मे सहज ही फॅस जाते है। साथ ही यह बड़े दुःख की बात है कि किसानों की गाढ़े पसीने की कमाई उन शहरों को सजाने और सब तरह सुखी बनाने मे विदेशी सरकार आसानी मे खर्च कर देती है, जिनमे असल मे किसानों को लाभ नहीं होता। एक ओर तो करोडों किसान दाने-दाने को तरसते हों, और दूसरी ओर १४ करोड रुपये लगाकर विना आवश्यकता के नई दिल्ली के महल वनते हों, यह हद दर्जे की निठुराई है। शहरों मे पानी के वन्दोवस्त के लिए या विजली का वन्दोवस्त करने के लिए रुपये पानी की तरह वहा दिये जाते है। किसान का वोझ हलका करने के लिए एक अंगुली भी नहीं उठाई जाती।

हमने ऊपर विस्तार से दरिद्रता से पैदा होनेवाले दोप दिखाये है। एक दरिद्रता दूर हो जाय, तो ये सारे दोप दूर हो सकते हैं। सुधारक लोग हर दोप को दूर करने के लिए अगल-अलग उपाय करते रहते है, पर उन्हे सफलता नहीं होती। जगह-जगह पैवन्द लगाने मे काम नही चलता। पत्ते-पत्ते पर जल देने से पूरे पेड का पोपण नहीं हो सकता। या तो विदेशी सरकार इस दरिद्रता को दूर करे या भारत की प्रजा इस दरिद्रता को पैदा करनेवाली सरकार को दूर करे और अपना वन्दोवस्त आप ही करके अपनी पुरानी सुख-समृद्धि को लौटा लावे।

---

(2) O F Hall, Professor of Sociology, Purdue University

(3) John A Ferrell, M D, International Health Board, and

(4) C E Allied, Professor of Agricultural Economics, University of Tenessee,

in "Farm Income & Farm Life" published by the University of Chicago Press, 1927, pages 155-189

A W Hayes *Rural Sociology*, Longmans, Green & Co 1929, Chap XVIII. P P 430-457

और देशों से भारत की खेती का मुक़ाबिला

१. सुधारकों की भूल

भारत की खेती की दशा अत्यन्त गिरी हुई है इस बात से किसी को भी इनकार नहीं है, परन्तु जो लोग सुधार के उपाय बताते है वे अक्सर जापान और योरप का नमूना पेश करके चाहते है कि हमारा देश भी इन्ही देशों की तरह उन्नति के उपाय करके कम-से-कम समय सुखी और समृद्ध हो जाय। वे देखते है कि हमारे सयुक्त-प्रान्त मे गेहूँ सीचे हुए खेत मे १२ मन प्रति एकड और बिना सींचे हुए मे ८ मन प्रति एकड़ पैदा होता है। वही कनाडा मे १३ मन और जर्मनी मे १७ मन होता है। इंग्लिस्तान मे एकड पीछे भारत का दूना होता है। परन्तु वे इस मुख्य बात को बिलकुल भूल जाते है कि इनमे से किसी देश मे विदेशी राज नहीं है। किसी देश का धन चूसकर पराये देश मे नहीं चला जाता, अपने देश की सरकार तन, मन, धन से अपने देश के ही हित मे लगी रहती है। जिस दिन सरकार और प्रजा मे हितका विरोध होता है, प्रजा तुरन्त सरकार को बदल देती है। फिर इन देशों मे सुधार के होने मे देर क्यों लगे? इसमे सन्देह नहीं कि खेती की कला मे संसार मे किसी समय भारत सबसे आगे था, परन्तु आज विदेशी हुकूमत की बदौलत सबसे पिछड़ गया है। जो मूल कारण उसके पिछड जाने का है उसके होते अपनी खोई दशा को पा जाना कैसे सम्भव है? फिर भी इस प्रकरण

में सुधारकों की शकाओं के समाधान के लिए हम कुछ देशों से मुकाविला करेंगे। खेती के सम्बन्ध मे अमेरिका संसार मे सबसे बढा-चढा समझा जाता है। पहले हम अमेरिका पर विचार करेंगे।

२. अमेरिका की खेती

'अमेरिका' साधारण बोलचाल मे अमेरिका के संयुक्तराज्यो को कहा जाता है। किसी जमाने मे, जिसको आज तीन सौ वरस के लगभग हुए, इंग्लिस्तान मे किसानों पर अत्याचार होने लगे थे, और ईसाइयों के 'भाई सम्प्रदाय' पर उनके भाई ईसाई तरह-तरह के जुल्म ढाने लगे थे। उस समय 'भाई सम्प्रदाय' वाले हजारों परिवार पहले-पहल हाल के मालूम किये हुए महाद्वीप अमेरिका मे चले गये और वस गये। जिस प्रदेश मे वसे उसका नाम 'नया इंग्लिस्तान' रक्खा। उसके वाद अपना देश छोड-छोड सताये हुए कुटुम्ब अमेरिका मे जाकर वसने लगे। धीरे-धीरे 'नये इग्लिस्तान' की तरह अनेक नये उपनिवेश वन गये, जिनमे अंग्रेजी वोलनेवालों की संख्या ज्यादा थी। इसीलिए ये सभी उपनिवेश अंग्रेजों की जायदाद वन गये और ब्रिटेन उनसे लाभ उठाने लगा। जव धन चूसने की क्रिया अपनी हद को पहुँच गई तव वहाँ स्वदेशी और वहिष्कार का आन्दोलन चला, और अन्त मे स्वतंत्रता का युद्ध हुआ, जिसमे इंग्लिस्तान एक तरफ था और वहुत-से संयुक्तप्रदेश वाशिङ्गटन के नेतृत्व मे दूसरी तरफ थे। अन्त मे वाशिङ्गटन विजयी हुआ और सवत् १८३३ मे ये संयुक्त राज्य स्वतंत्र हो गये। इस तरह इनको स्वतंत्र हुए डेढ सौ वरस हो गये। मोटे तौर से यों समझना चाहिए कि उन्हे स्वतंत्र हुए जितना समय वीता, हमे परतंत्र

हुए भी उतना ही समय बीता है। साथ ही मशीना की उन्नति का आरम्भ हुए भी लगभग ७५ वरस वीते हैं, और लगभग ६० वरस पहले अमेरिका की खेती प्रायः उतनी ही उपजाऊ थी जितनी आज भारतवर्ष की खेती है। स्वतंत्र अमेरिका को इस तरह अपनी वर्तमान उन्नत दशा को पहुँचने मे ६० वरस लगे है। भारतवर्ष की वात जाने दीजिए, क्योंकि वह पराधीन है। परन्तु इंग्लैण्ड, फ्रान्स, जर्मनी, रूस तो अमेरिका से पहले के स्वतंत्र देश हैं, परन्तु उन्होंने भी उतनी उन्नति नहीं कर पाई है जितनी अमेरिका ने की है। इसका कारण क्या है ? अमेरिका की परिस्थिति पर विचार करने से इस सवाल का जवाव मिल जायगा।

अमेरिका की आवादी प्राय: गोरों की है, वह शहरोंवाला देश है। उसका क्षेत्रफल ३०,१३,००० वर्गमील है और आवादी साढ़े ग्यारह करोड है। इस तरह वहाँ मील पीछे आज ३८ आदमी के लगभग वसते है। भारतवर्ष का क्षेत्रफल १३ लाख वर्गमील के लगभग और आवादो पैंतीस करोड के लगभग है। इस तरह यहाँ वर्गमील पीछे २६९ आदमी वसते हैं। इस तरह भारतवर्ष की वस्ती लगभग सात गुना ज्यादा घनी है। किसानों की आवादी भारतवर्ष मे तीन-चौथाई है, और जितने लोग खेत के सहारे गुजर करते है वे सैकडा पीछे नव्वे के लगभग हैं। इस तरह अकेले किसानों की आवादी अगर ली जाय तो मील पीछे हमारे देश मे २३४ किसाने वसते हैं। यह वात विलकुल प्रत्यक्ष है कि हमारे यहाँ अमेरिका के मुकाविले खेती के लिए धरती कम है और खेती के सहारे जीनेवाले अत्यधिक है। संवत् १९७८ की मर्दुमशुमारी मे खेती करनेवालों की गिनती वाईस करोड साढ़े नव्वे लाख के लगभग थी। कुछ जमीन जिसमे खेती

होती है, लगभग साढ़े बाईस करोड एकड के है। इस तरह भारत मे किसानों के सिर पीछे मुश्किल से एक एकड की खेती पडती है। सवत १९६९ मे अमेरिका मे किसानों के पास सिर पीछे औसत ५५ एकड के खेत थे और सिर पीछे २० एकड परती। वहाँ किसानों की गिनती धीरे-धीरे घटती जा रही है। संम्वत् १९०७ मे कुल आवादी के ६३ प्रति सैकडा किसान थे, संवत् १९७७ मे आवादी २९ प्रतिशत हो गई है। इतनी उन्नति होते हुए भी वहाँ किसानों की संख्या क्यों घटती जाती है? इसलिए कि उद्योग-व्यवसाय के मुकाविले मे खेती की आर्थिक स्थिति वरावर गिरी हुई रहती है। "इसका अर्थ यह है कि इस संसार की वडी-वडी मण्डियों मे अमेरिका के उद्योग-व्यवसाय को वढ़ा-चढा रखने के लिए वहाँ की खेती का वलिदान करना पड़ेगा।"[१]

भारत मे सिर पीछे जो एक एकड की खेती का औसत वैठता है उसमे भी छोटे-छोटे टुकड़े है और वे टुकड़े दूर-दूर पर है। अमेरिका मे सैकडों एकड की इकट्ठी खेती एकसाथ है जिसकी जुताई-वुवाई के लिए इकट्ठी मशीनों से काम लेने मे किफायत होती है। यह वात तो प्रत्यक्ष है कि रोजगार का फैलाव जितने अधिक विस्तार का होगा उतनी ही अधिक लागत भी वैठेगी और उसी हिसाव से मुनाफा भी ज्यादा होगा। यूरोप के स्वतन्त्र देशों मे भी जिन देशों की आवादी घनी है और किसान को सिर पीछे खेती करने को कम जमीन मिलती है वहाँ के किसानों ने भी अमेरिका के किसानों के मुकाविले कम उन्नति की है, यद्यपि न तो उनके

१ Farm Income & Farm Life · The University of Chicago Press, 1927 P 106

यहाँ भारत की तरह औसत जोत इतनी कम है और न पराधी-नता है और न उससे उपजी हुई घोर दरिद्रता।

इस बात को भी भूल न जाना चाहिए कि अमेरिका आदि देशों के किसानों को लगान के बढने या खेत से बेदखल हो जाने का उस तरह का डर नहीं है जिस तरह भारत मे है। खेती की सुरक्षा तो भारत के मुकाबिले उन उपनिवेशों मे ही अच्छी है जहाँ गिरमिटवाली गुलामी करने बहुत-से भारतीय गये और सुभीता देखकर वहीं बस गये और खेती करने लगे। विदेशों की-सी सुरक्षा यहाँ भी हो जाय तो पैदावार बढ सकती है।

अमेरिका मे पहले आबादी भी थोडी थी और मशीनों की चाल भी नहीं चली थी, तब वे अफरीका के हबशियों को गुलाम बनाकर ले गये और काम लेने लगे। विस्तार मे खेती का काम बिना कल के सहारे करने के लिए बहुत ज्यादा आदमियों की जरूरत होती है, इस-लिए वहाँ मशीनों की चाल चल जाने से आदमियों की जरूरत घटती गई। पिछले साठ बरसों मे से पहले तीस बरसों मे अधिक काम मशीनो के प्रचार ने किया। यह प्रचार और शिक्षा का काम कृषि-विभाग करता रहा। विक्रमी की बीसवीं अर्धशताब्दी के बीतते-बीतते अमेरिका वालों का जो जोश ठण्डा पड गया था वह धीरे-धीरे जगने लगा। पिछले तीस बरसों मे यह जागृति जोरों से इसलिए हो गई कि कच्चे माल की दर बहुत जोरों से चढने लगी और लोग खेती की ओर झुकने लगे, जिससे भय हुआ कि अन्न घट जायगा। तब फिर से कृषि महा-विद्यालय और कृषि-विभाग की जाँचवाले दफ्तर खुल गये। आवाज उठी कि वैज्ञानिक प्रयोग किसान तक जबरदस्ती पहुँचाये जाने चाहिए। खेती के विशेषज्ञ जिले के एजेण्ट और खेती के संवादपत्रों

ने इस काम को उठा लिया। रेल की गाडियों मे और मोटरों में सिखानेवाले और कर दिखानेवाले बैठकर गाँव-गाँव का दौरा करने लगे। हर तरह की सरकारी सहायता बडी उदारता से मिलने लगी। क्यों न हो, अपने देश की खेती के बढाने की बात जो थी। खेती की योग्यता के बढाने के प्रश्न पर अमेरिका मे मनुष्य का जितना दिमाग और जितनी ताकत पिछले १५ वर्षों मे लगाई गई है, इतिहास मे कहीं कभी नहीं लगाई गई थी।[१] पंजाब के गुडगाँव के डिपुटी-कमिश्नर मिस्टर ब्रेन ने थोड़ी बहुत उसी ढँग पर कोशिश की थी, परन्तु उन्हे सफलता न हो पाई। कौवा चला हस की चाल, अपनी चाल भी भूल गया। अमेरिका मे जो काम होता है उसपर किसानों का पूरा विश्वास है। यहाँ सरकार मे और किसान मे भेड़िया और भेड़ का सम्बन्ध है। किसानों को सरकारी अफसरों का विश्वास नहीं है। जो कुछ ब्रेन साहब कर पाये, वह अफ़सरी के जोम पर। उनकी नीयत बडी अच्छी थी, परन्तु वह सरकारपने का कलङ्क अपने व्यक्तित्व से मिटा न सकते थे। उन्होंने ज्योंही पीठ फेरी, उनका सारा प्रभाव मिट गया और सुधार की दशा फिर ज्यों-की-त्यों हो गई। बात यह थी कि उनके अधिकार मे मालगुजारी का बोझा घटाना नहीं था। वह बहुत कुछ शोरगुल करके रह गये, इसीलिए अधिक-से-अधिक वह भी पैबन्द लगाने का काम ही कर सकते थे, और हम दिखा आये है कि जहाँ जड ही खराब है वहाँ पत्ते-पत्ते की सिंचाई काम नहीं दे सकती। वह चाहते थे कि सरकार की ओर से माली सहायता मिले, मालगुजारी कम की जाय, जगल बढाये जायं और

१ Farm Income and Farm Life The University of Chicago Press 1927, P 115

किसानों का उनपर अधिकार रहे।[1] लाट साहब हेली ने उनकी पुस्तक की भूमिका लिखी, परन्तु व्यवहार मे ब्रेन के दिमाग की अवहेलना की।

अमेरिका मे जितने सुभीते है, उतने सुभीते जिस देश मे हो जाय उसी देश की खेती दिन-पर-दिन बढती जा सकती है। अमेरिका के सुभीते संक्षेप से ये है :—

(१) वह स्वाधीन राज्य है और वहां खेती से मिला हुआ कर देश के भीतर ही ख़र्च होता है।

(२) खेती पर किसान का सदैव का स्वार्थ है, उसे वेदखली का या इज़ाफा लगान का कोई भय नहीं है।

(३) थोडे-से-थोडे कर में उसे ज्यादा-से-ज्यादा रक्षा मिलती है।

(४) जीवन की जितनी जरूरी चीजें है वे उसके पास काफी से ज्यादा है।

(५) उसके पास रोजगार का काम लगातार साल भर के लिए है, और वह अपने लिए काफी कमाई करके फुरसत की घडियो का सुख भी लेता है।

(६) सारे परिवार के लिए मन-बहलाव का उपाय है और मेहनत करने के बाद नित्य उसे मन-बहलाव का सुभीता मिलता है।

(७) खेती के सम्बन्ध की सब तरह की शिक्षा के सुभीते उसे मिलते है।

(८) सफाई, मकान और तन्दुरुस्ती की रक्षा के सारे उत्तम उपाय उसे प्राप्त है।

१ F L Brayne Village uplift in India Pioneer Press, Allahabad, 1927, Pp 64-66, & 71

(९) बाहर की आमद-रफ्त पत्र-व्यवहार और व्यापार के सब तरह के सुभीते उसे मिलते है।

(१०) जैसे उसका सारा देश स्वराज्य है उसी तरह उसका गाँव या बस्ती उस महास्वराज्य का एक स्वाधीन टुकडा है।

(११) उसके केन्द्रीय स्वराज्य से उसकी बस्ती का सम्बन्ध उसकी बस्ती के लिए सर्वथा हितकर है।

हमने जान-बूझकर मशीन के सुभीते और इकट्ठी बड़े रकबे की खेती ये दोनों बाते शामिल नहीं कीं। हमारे देश मे बड़े रकबे मिल नही सकते और जो लोग आजकल मशीनों के चमत्कार को देख-कर उनपर हजार जान से फिदा हो रहे है हम उन्हे यह याद दिलाना चाहते है कि जो मशीन दो सौ आदमियों की जगह केवल एक आदमी को लगाकर काम कर सकती है वह एकसौ निन्यानवे आदमियों को बेकार भी रखती है। ऐसी मशीनों की जरूरत वहाँ पड सकती है जहाँ आदमी कम हों और काम ज्यादा हो। हमारे देश मे इसका बिलकुल उलटा है। आज तो हमारे यहाँ आदमी ज्यादा है और उनके लिए काफी मजूरी नहीं है। इसके सिवा मशीनों का काम बड़े पैमानों पर होता है। हमारा देश ऐसी स्थिति मे है कि खेती का काम बड़े पैमाने पर नही हो सकता। इस रोजगार को बडे पैमाने पर करने मे भी भारत की जनता की हानि है। जिस तरह कपड़े का कारोबार बडे पैमाने पर होने से भारत मे बेकारी का रोग फैल गया, उसी तरह खेती का कारोबार भी बड़े पैमाने पर होने से बेकारी बढती ही जायगी। यदि सम्पत्तिशास्त्र को ससार के कल्याण की दृष्टि से देखें और परस्पर लूटनेवाली राष्ट्रीयता का दुर्भाव हटादें तो हमें यह कहना पडेगा कि कलो का प्रयोग वही तक कल्याणकारी है

जहाँतक वह अधिक-से-अधिक मनुष्यो को काम और दाम देकर अधिक-से-अधिक अच्छाई और मात्रा में माल तैयार कर सके। हम ऊपर प्रमाण के साथ यह दिखा आये हैं, कि ऐसे उत्तम सुभीते के रहते भी किसानो की गिनती घटती जाती है और अधिक लोग ससार को लूटनेवाले उद्योग-व्यवसाय की ओर चले जा रहे है। मिल की माया से मोहित मनुष्य इस झूठी कल्पना मे उलझे हुए है कि औद्योगिक लूट वरावर जारी रहेगी और लुटनेवाले संसारी जीव जगकर इस लूट का द्वार कभी वन्द न कर सकेंगे, परन्तु यह भारी भ्रम वहुत काल तक न रह सकेगा।

फिर भी अमेरिका से हमको जो बातें सीखने लायक है हम जरूर सीख लेगे। हम जितने सुभीते गिना आये है, भारत के लिए हम वे सभी सुभीते चाहते है।

वर्तमान समय मे हम मोटरों पर चलनेवाले किसानों और मजूरों की तरह अपने यहाँके किसानों और मजूरों को विमानों का भोग-विलास करते देखने की स्पर्धा नहीं रखते। "भोजन सादा हो परन्तु भरपेट मिले, और पशुओं और अतिथियों तक के खिलाने के लिए वच जाय। भरसक खेतों की ही उपज हो, मोटा चाहे कितना ही हो और भाँति-भाँति का चाहे न भी मिल सके। खद्दर सस्ता हो जिससे शरीर की रक्षा हो सके और सर्दी से वचाव हो, चाहे महीन मुलायम और सुन्दर न हो परन्तु जरूरत से किसी तरह कम न हो। छाया के लिए मकानियत काफी हो, चाहे उसमे सजावट और सुघराई न हो तो भी सफाई पूरी रह सके। वहुत थोड़े से खर्च मे शिक्षा मिले, पुस्तके मिले और सव तरह के मनवहलाव का सामान हो जायँ। सामाजिक काम भी बिना वाधा के हो सकें। जोखिमो का वीमा भी

होता रहे और धरती पर के जीवन के लिए और भी कुछ थोडी-बहुत वे-जरूरी वाते भी सुलभ हों। संसार के अधिकाश किसानों को इससे ज्यादा सुभीते नहीं है। अधिक लोगों को तो असल मे इनसे बहुत कम हैं। यह एक बहुत दिनों से पक्की वात है कि पीढियाँ-पर-पीढियाँ गुजरती गई हैं, और जीवन के इन परिमाणों से सन्तुष्ट रह-कर वे केवल किसान ही नहीं वने रहे वल्कि जितना हमे चाहिए था उतने से अधिक उपजाते भी रहे। इससे वढकर इस वात की कोई गवाही हो नही सकती कि जीवन के इससे अधिक ऊंचे परिमाणों की असल मे जरूरत न थी, या यों कहना चाहिए कि खेती की परिस्थिति मे इससे ऊँचे परिमाण की रक्षा नही की जा सकती थी।"[१] हम उस सादगी को ज्यादा पसन्द करते है जिसमे कि ईमानदारी से रहकर किसान अपने आत्मिक जीवन की पूरी ऊँचाई तक उभर सके। वह विज्ञापनवाजी के फन्दों मे न फँसे, सूचीपत्रों से अपने को न ठगावे, ठगों की तस्वीरों और मोहिनी वातों पर लुभा न जाय। इश्तिहारी रोजगारों का शिकार न वने, और विलासिता मे न फंसे। अमेरिका के किसानों के ये थोड़े से दोप है जिनसे वचना होगा। दलाली, मुकदमे-वाजी, जुआ, चोरी, नशा, आलस्य, गुण्डापन, व्यभिचार आदि से,जो हमारे किसानों मे दिन-पर-दिन बढ़ते चले जा रहे है, उसे वचना होगा।

३. डेनमार्क की खेती

ससार मे अमेरिका की खेती सवसे वढी-चढी है, परन्तु जैसा

१ Alexander E Cance, Professor of Agricultural Economics, Massachusetts Agricultural College, in "Farm Income and Farm Life," The University of Chicago Press, New York, 1927 P 78

हम देख आये है यह उन्नति हाल की ही है। अमेरिका ने अपने कृषि-विभाग की जानकारी बढाने के लिए कृषि-विज्ञान के बड़े-बड़े विद्वानों को यूरोप के भिन्न-भिन्न देशों मे पर्यटन कराया। यूरोप मे खेती के व्यवसाय मे अमेरिका वालों ने डेनमार्क को सबसे अधिक बढा-चढा पाया, और अनेक बाते इस छोटे से देश से सीखीं। यों कहना भी अनुचित न होगा कि जब हम डेनमार्क की चर्चा करते है तो असल मे उस देश की चर्चा करते है जो अमेरिका के लिए भी आदर्श है। इस तरह समझना चाहिए कि संसार मे खेती की उन्नति के लिए डेनमार्क ही सबसे उत्तम आदर्श है। यूरोप के 'लीग ऑफ नेशन्स' (राष्ट्र संघ) की ओर से (दी रूरल हाईजीन इण्टर चेञ्ज) कृषि-स्वास्थ्य—परस्पर विनिमय विभाग ने स्वास्थ्य-सगठन पर कई उपयोगी पुस्तिकाये निकलवाई है। डेनी सरकार के खेती के विभाग के मंत्री श्री एस० सोरन्सेन ने डेनी खेती पर एक बडी अच्छी पुस्तिका लिखी है। उसकी भूमिका मे डाक्टर बूद्रो ने लिखा है, कि जहाँ की आर्थिक दशा बहुत अच्छी और पक्की नींव पर जमी हुई नहीं है वहाँ तन्दुरुस्ती की रक्षा के लिए उपाय नहीं किये जा सकते। तात्पर्य यह है कि जिन राष्ट्रों को स्वास्थ्य-रक्षा पूरी तौर पर मंजूर हो वे अपनी आर्थिक दशा सुधारे, और डेनमार्क की तरह खेती और किसानों की उन्नति करे। स्वास्थ्य-विभाग ने इसीलिए कृषि-विभाग सम्बन्धी पुस्तिका छपवाई है। इस प्रसग मे हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि पिछले पृष्ठों मे हमने जो दरिद्रता का सम्बन्ध रोगों और मौतों की बढ़ी हुई संख्या से दिखाया है वह संसार मे निर्विवाद बात मानी जाती है।

परन्तु डेनमार्क खेती मे जितना ही बढा-चढा हुआ है, उतना ही

विस्तार मे छोटा है। यह समुद्र-तट पर बसा हुआ केवल १६,५३६ वर्गमील का क्षेत्रफल रखता है। उसकी आवादी ३४,६७,००० प्राणियो की है। इस देश से क्षेत्रफल के हिसाब से भारत का अवध प्रान्त ड्योडा वडा है, और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त वरावर है। भारत मे इससे छोटे प्रान्त केवल दिल्ली और अजमेर के हैं। आवादी मे सीमा प्रान्त का ड्योढ़ा है, और सिन्ध प्रान्त से कुछ कम हैं। अमेरिका के मुकाबले मे यहाँ की आवादी ज्यादा घनी है। ये अङ्क हमने सवत् १९८५ के दिये हैं। डेनमार्क मे देहातों की आवादी सैकडा पीछे ५७ है। इसमे से सभी खेती नहीं करते। खेती के सम्वन्ध के सारे काम करने वालों को गिने तो किसानों की आवादी सैकडा पीछे ३३ ही ठहरती है। इनमे से खेत के मालिकों के कब्जे मे १,७७,००० खेत है। पट्टे पर २,२०७ है। लगान पर ८,५५१ है। इस तरह कुल खेती मे ९४ प्रति सैकडा लोगों की अपनी मिल्कियत है, वाकी ६ प्रति सैकडा पट्टे या लगान पर है। छोटे-से-छोटे खेत आठ एकड तक के है, परन्तु सवसे वडी सख्या २५ एकडवाले खेतों की है। उनके वाद ७५ एकडवालों की संख्या लगभग उतनी ही है जितनी कि आठ एकडवालों की संख्या है, इस तरह असल मे वहाँ थोक खेती ज्यादा है। किसानों की आवादी के हिसाब से जितने क्षेत्रफल पर किसान अधिकार रखता है वह हमारे यहाँ से कहीं ज्यादा है। सत्तरह-सत्तरह एकड की जोते छोटी जोतों का औसत क्षेत्रफल समझी जाती है।[१] हमारे यहाँ जिनके पास १७ एकड खेत है वे १७ भिन्न-भिन्न

१ 'Small Holdings in Denmark' by L Th Arnskov, Danish Foreign office Journal, 1924 (Dyioa and Jeppesen) Danish Agriculture (Statistics), The Agricultural Council of Denmark vestre Boulevard 4-Copenhagen V

जगहों मे बटे हुए भी है। थोक के थोक इकट्ठे नहीं है। सवत १९७७-७८ और ७९ मे वहां एकड पीछे लगभग १२०३) रुपये दाम देने पडते थे। जिन लोगों के पास छोटी-छोटी जोत थी उन्हे बढाने के लिए, और जिनके पास पट्टे थे या जो रय्यत की तरह लगान पर खेत लेकर खेती करते करते थे, उन्हे खेतों को खरीद लेने मे वहाँ की सरकार ने बहुत कम व्याज पर और उन खेतों की ही जमानत पर उधार रुपये दिये, और किसानो को खेतों का मालिक बनाया। यह उधार के रुपये भी वसूल करने का ढग ऐसा अच्छा रक्खा कि छोटी-छोटी किस्तों मे साल-साल पर किसान लोग अदा करे, जिसमे कई बरसों मे वह सरकारी उधार भी चुकता हो जाय और किसानो की मिल्कियत भी पक्की पोढी होजाय। डेनी सरकार ने किसानों के साथ केवल इतनी रिआयत ही न की बल्कि उनका सगठन कराने मे, सहयोग समितियों के बनाने मे उनकी उपज को चोखा बनाने मे, और ससार की मण्डियों मे, उनके माल के अच्छे-से-अच्छे दाम खड़े कराने मे पूरी मदद दी और कोई बात उठा न रक्खी।

बाहर के लोग यह देखकर आश्चर्य करते है कि डेनों के देश की समाई इतनी कम होने पर भी ससार की मण्डियों मे एक-तिहाई मक्खन, एक-चौथाई सुअर का मास, और दसवाँ भाग अडे वह कहाँसे लाकर बेचता है। श्री सोरन्सेन इस रहस्य को थोड़े ही मे खोल देते है। डेढ़ सौ बरस के सगठन और घनी खेती का यह फल है, और इतना कह देने मे जरा भी गलती का डर नहीं है कि डेनी किसान अपने काम मे बडे कुशल और शिक्षित है और उनका सामाजिक और मानसिक परिमाण बहुत ऊंचा है।

हमारा भी तो इन्हीं डेढ़सौ बरसो का रोना है। जो देश स्वाधीन

थे या स्वाधीन हो गये, जैसे डेनमार्क और अमेरिका, उन्होंने उसी समय अपना सगठन और उत्थान आरम्भ किया, उसी समय भारत के पाँवों मे बेडियाँ पड गईं, और उसके शरीर मे खून चूसकर बाहर जानेवाली जोंकें लग गईं। डेनमार्क की उन्नति की बुनियाद भी बहुत पुरानी है। पुराने डेन्मार्क मे उसी समय उसी तरह का ग्राम-सगठन था जैसा कि भारत मे। हरेक गाँव एक प्रकार की सहयोगी-समिति थी जिसमे गाँव का हर आदमी शामिल था। वे अपना कनून खुद बनाते थे। उनकी कानून की किताब मे खेती, पशुपालन आदि के नियम लिखे रहते थे। गाँववाले साल भर के लिए या तीन साल के लिए अपना मुखिया चुन लेते थे। गाँव में हरी घास पर यही मुखिया सभा किया करता था। हर मेम्बर के बैठने के लिए उसकी जायदाद की हैसियत के अनुसार मंच हुआ करता था। मुखिया काम शुरू करता था और फिर ऐसी बातें तय करली जाती थीं कि जोताई-बोवाई किस-किस दिन की जायगी, घास कब कटेगी, फसल कब काटी जायगी, कौन-कौन से दरख्त कटेंगे और कब कटेंगे, ढोरों का क्या बन्दोबस्त होगा, ग्वाले को क्या दिया जायगा। इस तरह के छोटे-छोटे प्रश्नों से लेकर गाँव के सब तरह के बन्दोबस्त इसी पंचायत मे होते थे। दीवानी और फौजदारी दोनों तरह के मुक-दमे फैसल होते थे। जुर्माने होते थे और लिये जाते थे। ये पचायतें बड़े अदब-क़ायदे से होती थीं। कड़े अनुशासन से काम लिया जाता था। पचायती पाठशाला आदि पचायत की चीजे थीं। किसीके लडका हो या न हो, पर हर गॉववाला पढानेवाले के भोजन के खर्च मे हिस्सा देता था। इसके सिवा हर पढ़नेवाला लडका फीस भी देता था, जिससे मास्टर की तनख्वाह निकलती थी। बहुत विस्तार करना

व्यर्थ है, इतना कह देना काफी होगा कि हरेक गाँव अपने स्थानीय स्वराज्य का उपभोग करता था। परन्तु इसके साथ-साथ एक दोष यह था कि जमींदारी और काश्तकारी का भी सम्बन्ध था और मजूरों और आसामियों के साथ गुलामों का-सा वर्ताव होता था। परन्तु इस प्रथा मे धीरे-धीरे सुधार होने लगा, और पिछले पचास वर्षों मे सुधारों का वेग वहुत वढता गया। जहाँ-जहाँ जमीन रेतीली थी और खेती नहीं हो सकती थी, वहाँकी जमीनों पर जंगल लगा दिये गये। जहाँ-जहाँ हो सका पशुओं का चारा उपजाया जाने लगा। घासों के उगने की जगह आलू, गाजर, शलजम आदि कन्दमूल उपजाये जाने लगे। वाज-वाज फसलें पाँचवे, वाज छठवें और वाज सातवे साल अच्छी होती थीं। अदला-वदली करके इस तरह पर वहाँ खेती होने लगी कि जिस साल जिस चीज की उपज सवसे ज्यादा होनेवाली थी उस साल वही चीज वोई जाती थी। यह तो खेती की वात हुई, जिसमे कि उन्होंने ऐसी तरक्की की कि वढ़ते-वढ़ते एकड पीछे सोलह मन गेहूँ उपजाने लगे। डेनों का गाहक पहले इंग्लिस्तान था, परन्तु मण्डी मे और मुल्कों की चढा-ऊपरी से डेनों की अनाज की खपत कम होगई। उस समय डेन हताश नहीं हुए, वे गोवंश को पहले ही से सुधार रहे थे। जव अनाज की विक्री कम हुई तो उन्होंने मक्खन का रोजगार करना शुरू किया, गाये पालीं और वछड़े भी पालने लगे। भारत मे वैल वड़े काम के जानवर है, खेती उन्हींके वल पर होती है, परन्तु डेनमार्क मे ढुलाई और जुताई आदि का काम घोड़ो से लेते है, इसलिए गोमास-भक्षी अग्रेज ग्राहकों को वे वैलों का माँस देने लगे। मांस, चर्वी आदि के लिए वे पहले से सुअर भी पालते थे, और

अंडों के लिए मुर्ग, वतक आदि भी रखते थे। इस तरह उन्होंने अनाज की विक्री घटने पर गोमास, शूकर-मास, चर्बी, चमडा, मक्खन, अडे इत्यादि की विक्री वढाई। इस वात मे डेनी सरकार से उन्हे वहुत वडी मदद मिली। आज सिवाय अनाज के इन सव चीजों की विक्री डेनमाक की वहुत ज्यादा है। और ये सव चीजे खेती की उपज समझी जाती है। भारतवर्ष शायद ऐसी खूँखार तिजारत के लिए ठीक न होगा, परन्तु हमारे देश की शिक्षा के लिए वहाँ की सवसे वडी चीजे दो हैः—एक तो सहयोग-समितियाँ और दूसरे खेती की शिक्षा देनेवाले मदरसे।

सहयोग-समितियों की चर्चा भारतवर्ष मे वहुत चल रही है। उसके कानून भी वने हुए है। देश मे गवर्मेण्ट की ओर से उसका आन्दोलन चल रहा है। परन्तु हमारे देश मे और डेनमार्क मे यह भारी अन्तर है कि डेनों की सहयोग-समितियाँ गाँव की पचायतो से पैदा हुई है, और वहाँ की सरकार ने उन्हे अपना लिया है। यहाँ की सरकार ने पहले गाँव की पचायतों को नष्ट कर डाला, जिसको वहुत जल्दी सौ वरस के लगभग हो जायगे, और कोई छव्वीस वरस हुए कि विदेशी सरकार ने सहयोग-समितियों की वुनियाद डाली और उन्हे अपने जोर से फैलाया, परन्तु उनमे इतने वधेज रक्खे कि हमारे गरीव किसान उनको अपना न पाये। वहाँ सहयोग समितियों की वुनियाद नीचे से पडी थी, और यहाँ शिमले की ऊँचाई से। यह साफ है कि कौनसी वुनियाद मजवूत हो सकती है। वहाँ के किसानों ने सव तरह की समितियाँ वनाई है, जिनका आरम्भ पहले पहल 'मक्खन निकालनेवाली समिति' से हुआ। सवत १९३९ मे कुछ दरिद्र किसानों ने मिलकर मक्खन निकालने के लिए पहले

पहल समिति बनाई। वहाँ आजकल ऐसी चौदह सौ समितियाँ है। इनके सिवा खरीदने की, बेचने की, लेनदेन की, सब तरह की सहयोग-समितियाँ बन गई है। इन पर सरकारी नियत्रण नहीं है, परन्तु सरकार मे इनकी साख मानी जाती है, इनको उधार रुपये दिये जाते है, और इनके विरुद्ध सरकारी अदालतों मे मुकदमे नहीं चलाये जा सकते।

डेनमार्क की सारी उन्नति की पूँजी वहाँ की 'लोक-पाठशालाओं' मे है। पादरी ग्रुण्ट फिग ने ६० बरस से ऊपर हुए इन पाठशालाओं का आरम्भ किया था। उसने एक बार इस प्रकार अपनी इच्छा प्रकट की थी--"यह मेरी परम अभिलाषा है कि डेनों के लिए ऐसी पाठशालाये खुले जिनमे देश के युवक पढ सके। वहाँ वे मानव-स्वभाव और मानव-जीवन से अच्छा परिचय पा सके, और विशेष कर अपने को खूब समझ सके। वहाँ वे गाँवों मे रहनेवाले के कर्तव्य और सम्बन्ध अच्छी तरह समझ सके, और देश की जरूरते भी अच्छी तरह जाने। मातृ-भाषा की गोद मे उनकी देशभक्ति पलेगी, और डेनी गीतों मे उनके राष्ट्र का इतिहास पुष्ट होगा। हमारे लोगों को सुखी बनाने के लिए ऐसे मदरसे अमृत के कुण्ड होंगे।"[१]

सचमुच इसी अमृत के कुंड से डेनी किसानों का नया जीवन निकला। वहाँ ऐसे साठ मदरसे है, जिनमे लगभग सात हजार शिक्षार्थी है। ये १८ बरस से लेकर २५ बरस तक के युवक और युवतियाँ है। पाँच महीने मे युवकों की पढाई समाप्त होती है, और तीन महीनों मे युवतियों की। ये लोग प्रायः थोड़े लिखे-पढ़े मदरसों

१ Quoted from S Sorensen Danish Agriculture, League of Nations 1929 P 26 27

मे भर्ती होते है, और खेती की ऊँची-से-ऊँची विद्या इस थोड़े काल मे पढकर पण्डित हो जाते है।

सक्षेप से डेनमार्क मे भी हम वही सब सुभीते पाते हैं जिन ११ सुभीतों की चर्चा हम अमेरिका के सम्बन्ध मे कर आये है। यहाँ दोहराने की जरूरत नहीं है। अमेरिका से फ़र्क़ इतना ही है कि अमेरिका की अनाज और फल की खेती वढी हुई है और डेनी लोग पशु की खेती मे वढ़े-चढ़े हैं। अमेरिका मे खेतों का विस्तार सिर पीछे डेनमार्क की अपेक्षा वहुत ज्यादा है। इन दोनों देशों मे वैलों से काम नहीं लिया जाता, वल्कि लोग उन्हे खा जाते है, हाँ, वे गऊ के पालने मे वड़े होशियार है और दूध मक्खन की भारी तिजारत करते हैं।

संसार के सवसे वडे खेती करनेवाले देशों मे जो वाते हम देखते है उनमे सीखने की वातें लोहे की मशीन नहीं है वल्कि मनुष्यों के सगठन और प्रवन्ध हैं, जो हम भी कर सकते है अगर हमारे हाथ-पाँव खुले हों।

'लोक साहित्य माला'

'सस्ता साहित्य मण्डल' की स्थापना इस उद्देश्य को लेकर हुई थी कि जन साधारण को ऊँचा उठानेवाला साहित्य सस्ते-से-सस्ते मूल्य मे सुलभ कर दिया जाय। हम नही कह सकते कि 'मण्डल' इस उद्देश्य मे कहाँ तक सफल हुआ है, लेकिन इतना निश्चित है कि उसने अपने उद्देश्य की पूर्ति को ओर नेक नीयती से बढते रहने की कोशिश की है ओर हिन्दो में राष्ट्रनिर्माणकारी ओर जन-साधारण के लिए उपयोगी साहित्य देने मे उसने अपना खास स्थान बना लिया है। लेकिन हमको अपने इतने से कार्य से सतोष नही है। अभी तक 'मण्डल' से, कुछ अपवादो छोडकर, ऐसा साहित्य नही निकला जो बिलकुल जन-साधारण का साहित्य—लोक साहित्य कहा जासके। अभी तक आमतोर पर मध्यम श्रेणी के लोगो को सामने रखकर 'मण्डल' का प्रकाशन कार्य होता रहा है लेकिन अब हमको अनुभव हो रहा है कि हमें अपनी गति और दिशा बदलनी चाहिए और जनता का और जनता के लिए साहित्य प्रकाशित करने का खास तौर से आयोजन करना चाहिए।

इसी उपरोक्त विचार को सामने रखकर 'मण्डल' से हम 'लोक साहित्य माला' नाम की एक पुस्तक माला प्रकाशित करने की तजवीज कर रहे हैं। इस माला मे डबल क्राउन सोलह पेजी आकार की दो-ढाई सो पृष्ठो की लगभग दो सौ पुस्तके देने का हमारा विचार है। पुस्तके साधारणत जन-साधारण की समझ मे आने लायक सरल भाषा मे, अपने विषयो के सुयोग्य विद्वानो द्वारा लिखाई जायँगी। पुस्तको के विषयो मे जनसाधारण से सम्बन्ध रखनेवाले तमाम विषयो—जैसे खेती, बागवानी,

ग्राम उद्योग, पशुपालन, सफाई, सामाजिक बुराइयाँ, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, राजनैतिक, सामान्य जानकारी देशभक्तो की कहानियाँ, महाभारत-रामायण की कहानियाँ, चरित्रबल बढानेवाली कहानियाँ आदि का समावेश होगा। सक्षेप मे हमारा इरादा यह है कि हम लगभग दो सौ पुस्तको की एक ऐसी छोटी-सी लाइब्रेरी बना दे, जो साधारण पढे-लिखे लोगो के अन्दर वर्तमान काल के सारे विषयो को तथा उनको ऊँचा उठानेवाले युग परिवर्तनकारी विचारो को सरल-से-सरल भाषा मे रख दे और उसके बाद उन्हे फिर किसी विषय की खोज मे—उसका ज्ञान प्राप्त करने के लिए—कहीं बाहर न जाना पडे।

ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो-ढाई सौ पृष्ठो की पुस्तक माला की पुस्तको का दाम हम सस्ते-से-सस्ता रखना चाहते है। आम तौर पर हिन्दी मे उतने पृष्ठो की पुस्तक का मूल्य १) या १।) रु० रखा जाता है लेकिन हम इस माला के स्थायी ग्राहको के लिए छ आना और फुटकर ग्राहको के लिए आठ आना रखना चाहते है। कागज छपाई आदि बहुत बढिया होगी।

पहले पहल हम निम्नलिखित पाँच पुस्तके इस माला मे निकालने का आयोजन कर रहे है —

१ हमारे गाँवो की कहानी [स्वर्गीय रामदास गौड]
२ महाभारत के पात्र (१) [आचार्य नानालाल भट]
३ लोक-जीवन [आचार्य काका कालेलकर]
४ सतवाणी [वियोगी हरि]
५ वर्ण-धर्म [महात्मा गाधी]

'मण्डल' की 'सर्वोदय साहित्य माला' के प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।≡)
२—जीवन-साहित्य १।)
३—तामिलवेद ॥।)
४—शैतान की लकड़ी अर्थात् भारत में व्यसन और व्यभिचार ॥।≡)
५—सामाजिक कुरीतियाँ (जब्त · अप्राप्य) ॥।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।≡)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।≡)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥।≡)
१३—चीन की आवाज(अप्राप्य)।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ॥=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ॥)
२२—अँधेरे में उजाला ॥)
२३—स्वामीजी का बलिदान (अप्राप्य) ।-)
२४—हमारे जमाने की गुलामी (जब्त · अप्राप्य) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।=)
२७—क्या करें ? (दो भाग) १॥=)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥=)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥-)
३१—जब अंग्रेज नहीं आये थे- ।)
३२—गंगा गोविन्दसिंह (अप्राप्य) ॥=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)

३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिन्दी-मराठी-कोष २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
३७—महान् मातृत्व की ओर ॥≡)
३८—शिवाजी की योग्यता ।≡)
३९—तरंगित हृदय ॥)
४०—नरमेध १॥)
४१—दुखी दुनिया ।≡)
४२—जिन्दा लाश ॥)
४३—आत्म-कथा (गांधीजी) १॥)
४४—जब अंग्रेज आये (जब्त) १।≡)
४५—जीवन-विकास १) १॥)
४६—किसानों का बिगुल (जब्त) ≡)
४७—फाँसी ! ।≡)
४८—अनासक्तियोग तथा गीता-बोध (श्लोक-सहित) ।≡)
अनासक्तियोग ≡)
गीताबोध -)॥
४९—स्वर्ण-विहान (जब्त) ।≡)
५०—मराठों का उत्थान-पतन २॥)
५१—भाई के पत्र १॥) २)
५२—स्वगत ।≡)
५३—युग-धर्म (जब्त . अप्राप्य) १≡)
५४—स्त्री-समस्या १॥)
५५—विदेशी कपड़े का मुकाबिला ॥≡)
५६—चित्रपट ।≡)
५७—राष्ट्रवाणी (अप्राप्य) ॥≡)
५८—इंग्लैण्ड में महात्माजी १)
५९—रोटी का सवाल १)
६०—दैवी सम्पद् ।≡)
६१—जीवन-सूत्र ॥)
६२—हमारा कलंक ॥≡)
६३—बुद्बुद ॥)
६४—संघर्ष या सहयोग ? १॥)
६५—गांधी-विचार-दोहन ॥)
६६—एशिया की क्रान्ति (जब्त) १॥)
६७—हमारे राष्ट्र-निर्माता २॥)
६८—स्वतन्त्रता की ओर— १॥)
६९—आगे बढ़ो ! ॥)
७०—बुद्ध-वाणी ॥≡)
७१—कांग्रेस का इतिहास २॥)
७२—हमारे राष्ट्रपति १)
७३—मेरी कहानी (ज० नेहरू) ४)
७४—विश्व-इतिहास की झलक (ज० नेहरू) ८)

७५—हमारे किसानो का सवाल ।)
७६—नया शासन विधान
(प्रातीय स्वराज्य) ।।।)
७७ (१) गॉवो की कहानी ।।)

आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

गीता-मन्थन १।।
गाधीवाद समाजवाद १)
नया शासन विधान (फेडरेशन) ।।।)
विनाश या इलाज ? ।।)
राजनीति की भूमिका ।।)
महाभारत के पात्र- १ ।।)
सतवाणी ।।)
जवसे अग्रेज आये ।।)

सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाजार, दिल्ली

'मण्डल' : एक नज़र में

१. सस्ता साहित्य मण्डल सन् १८६० के सोसाइटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट के अनुसार एक रजिस्टर्ड संस्था है।

२. हिन्दी में उच्च कोटि का जीवन निर्माण करनेवाले राष्ट्रीय साहित्य सस्ते मूल्य में प्रकाशित करने के उद्देश्य से सन् १९२६ में सर्वश्री जमनालाल बजाज, घनश्यामदास बिडला, हरिभाऊ उपाध्याय, जीतमल लूणिया आदि ७ सज्जनो ने इसकी स्थापना की।

३. मण्डल से अबतक ७७ पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है; जिसमें लगभग आधी के दो से लगाकर सात संस्करण तक हो चुके है।

४. महात्मा गाधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और श्री राजगोपालाचार्य जैसे हमारे महान् नेता, टाल्स्टाय, विक्टर ह्यूगो, मोटले, क्रोपाटकिन, थॉमस केम्पिस, स्वेट मार्डेन, टैरेन्स मैक्स्विनी जैसे पाश्चात्य कलाकार, विद्वान् और क्रान्तिकारी विचारको तथा काका कालेलकर, किशोरलाल मशरूवाला, हरिभाऊ उपाध्याय, रामनाथ 'सुमन', वामन मल्हार जोशी, वियोगी हरि जैसे भारतीय साहित्य के प्रसिद्ध विद्वानो की महान् रचनायें मण्डल से प्रकाशित हुई है।

५ मण्डल के संस्थापक-मडल में भारतवर्ष के निम्नलिखित सुप्रसिद्ध लोकनेता, व्यवसायी, साहित्यसेवी और कार्यकर्त्ता है—

श्री घनश्यामदास बिड़ला, अध्यक्ष, दिल्ली।

श्री बाबू राजेन्द्रप्रसाद, पटना · श्री जमनालाल बजाज, वर्धा
श्री काका कालेलकर, वर्धा : श्री हरिभाऊ उपाध्याय, अजमेर
श्री महावीरप्रसाद पोद्दार, गोरखपुर · श्री जीतमल लूणिया, अजमेर

श्री मार्तण्ड उपाध्याय, मन्त्री, दिल्ली

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस, नई दिल्ली।